धर्म की महिमा

सम्पादनः

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

प्रकाशकः–

डी०सी० मीडीया टूण्डला
फिरोजाबाद उ०प्र०

कृतिः धर्म की महिमा

शुभाशीषः प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. जैनाचार्य
श्री 108 विद्यानंद जी महाराज

सम्पादकः एलाचार्य मुनि वसुनन्दी

सहयोगीः संघस्थ सभी साधुवृंद एवं त्यागी व्रती

प्रथम संस्करणः अगस्त 2009

प्रतियांः 1100

प्रकाशकः डी.सी. मीडीया टूण्डला फिरोजाबाद उ.प्र.

मुद्रकः जैन रत्न सचिन जैन "निकुंज"
मो0 9927590893

प्राप्ति स्थानः श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय कार्यालय
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

धर्म की महिमा

धर्म स्नेही सत् श्रद्धालुः- सेवा को परम धर्म कहते हैं। यदि परम धर्म ही सेवा हे, तो सेवा किस प्रकार से, कैसे, क्यों, कब तथा किसकी करना चाहिये यदि ये सब बाते समझ में आ जाये तो धर्म का सही स्वरूप समझ में आ जायेगा। जब तक सही तरह से हम सेवा, कर्तव्य आदि को समझ नहीं पाये तब तक धर्म के परम साहृय को प्राप्त नहीं कर पाते।

धर्म की परिभाषायें, व्याख्यायें, तात्पर्य, आशय सभी ने अलग-अलग प्रकार से कही और कई बार व्यक्ति उसमें उलझ जाता है तथा भटक जाता है। यद्यपि प्रत्येक पगडंडी आपको लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ हो सकती है किन्तु व्यक्ति की निष्ठा, आस्था, श्रद्धा की कमी के कारण जीवन में केवल पगडंडियाँ बदलता रहता है इसलिये जीवन में कभी मंजिल तक नहीं पहुँचता। जैसे ''कोई व्यक्ति अपनी प्यास मिटाने के लिये अपने खेतों में कुआँ खोदे, धीरे-धीरे कुआँ खोदा लेकिन उसमें पानी नहीं निकला, वह व्यक्ति हताश हो गया तो उसने दूसरा, तीसरा, चौथा लगभग दस कुयें ५-५ फीट के खोद लिये किन्तु पानी नहीं निकला यदि उसने एक ही कुआँ १०० फीट का खोद लिया होता तो पानी निकल आया होता।

तो महानुभाव! जब व्यक्ति की श्रद्धा कमजोर होती है, तब वह धर्म के रूपों को, मार्गों को, पगडंडियों को बदलता रहता है। इसके विपरीत जब व्यक्ति की श्रद्धा मजबूत होती है तो वह पत्थर से पानी निकाल लेता है, आस्था दृढ़ होती है तो अग्नि को पानी बना लेता है, नाग का हार बन जाता है, श्रद्धा दृढ़ होती है तो तलवार फूलों की माला बन जाती है, श्रद्धा दृढ़ होती है तो पत्थर में भगवान पैदा हो जाता है, स्वर्गों में देवों के आसन कम्पायमान हो जाते है तथा जंगल में मंगल हो जाता है। महानुभाव! श्रद्धा में बहुत दम है श्रद्धा नहीं तो कुछ नहीं। महानुभाव! श्रद्धा धर्म का प्राण है, शरीर चाहे एक फीट का हो या ५ फीट का क्या फर्क पड़ता है यदि शरीर में प्राण नहीं हैं तो, छोटा बालक भी बड़ा काम कर सकता यदि प्राण हैं, नहीं तो वह मुर्दा है। ऐसे ही जिसकी धार्मिक क्रियाओं से श्रद्धा जुड़ी हुयी है, तो छोटी क्रिया भी बहुत फल दे सकती है। और जिनकी धार्मिक क्रिया में श्रद्धा नहीं है परन्तु रूढ़िवादिता में मजबूरन कर रहा है, उसकी क्रियायें शुभ फलदायी नहीं हो सकती। एक व्यक्ति कहता है कि मुझे मंदिर आना पड़ता है, और दूसरा व्यक्ति कहता है कि मंदिर आने में परम सौभाग्य है, पुण्य का उदय है, बिना मंदिर के मुझे चैन नहीं मिलता, मेरा मन नहीं लगता, मेरा बस चले तो मैं दुकान छोडकर मंदिर में बैठा रहूँ। मजबूरी में मुझे गृहस्थ कार्य करना

पडता हैं तो महानुभाव! ''सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा वह है जिसे संसार का कार्य करना पडता है करना नहीं चाहता, और मिथ्यादृष्टि वह है जिसे धर्म का कार्य करना पड़ रहा है, करना नहीं चाहता, तो अपनी अपनी आत्मा से पूछो कि धर्म का कार्य तुम्हें करना पड़ रहा है या अपने मन से कर रहे हो? यदि मन से कर रहे हो तो १०० प्रतिशत धर्मात्मा हो। और यदि केवल तन से कर रहे हो या वचन से कर रहे हो तो आप धार्मिक हो। धर्मात्मा वन धार्मिक होना दोनों में थोड़ा अंतर है धार्मिक व्यक्ति वह है जिसके पास धर्मात्मापने का प्रमाणपत्र है। मैं पूजा करता हूँ, स्वाध्याय करता हूँ, जाप लगाता हूँ, रात में नहीं खाता आदि। तो सामने वाला कहेगा कि ये धर्मात्मा है तो इसके पास धर्मात्मापने का प्रमाण पत्र है, वास्तविकता में उसकी आत्मा में धर्म नहीं है। तो कहने का आशय है कि व्यक्ति रूढ़िवाद भी कार्य करता है। और जो व्यक्ति अंतरंग की श्रद्धा के साथ, भक्ति के साथ, समर्पण के साथ, निष्ठा के साथ, और पूर्ण मनोयोग से, वचन योग से और पूर्ण काययोग के साथ जो कार्य होता है वह धर्म कार्य होता है, और जो व्यक्ति धर्मात्मा होता है उसकी आत्मा में धर्म होता है चाहे वह घर में बैठा हो चाहे मंदिर में। यदि तुम्हारी आत्मा में दया धर्म है तो न तो घर में ही हिंसा करोगे और न ही मंदिर में झूठ न घर में बोलोगे न मंदिर में, चोरी न घर में करोगे और न दुकान में। तो महानुभाव जब तक धर्म का सही अर्थ समझ नहीं आया तब तक भगवान के सामने तो धर्म करोगे, पूजा पाठ करोगे किन्तु जब घर जाओगे तो यहाँ-वहाँ, भटकोगे, भगवान कुछ नहीं करते ऐसा कहकर इधर-उधर भटकोगे। तो जिस व्यक्ति को वह धर्म समझ नहीं आता यहाँ-वहाँ जाता है और भगवान को भी धोका देता है किन्तु सही मायने में वह न संसार को, न भगवान को वह तो स्वयं को धोखा देता है। तो महानुभाव जिसके अंतरंग में श्रद्धा, भक्ति समर्पण, निष्ठा होती है वह भगवान के सामने कहता है

तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अन्तर्यामी हे भगवान! तुम तीन लोक के स्वामी हो, एक एक द्रव्य, एक एक गुण और एक एक पर्याय को प्रत्यक्ष में आप देखने जानने वाले हो, आपके केवल ज्ञान दर्शन में स्पष्ट झलकता है, आपसे मैं क्या कहूँ और मैं क्या छिपाऊँ। मेरा सर्वज्ञ सब जानता है सब देखने वाला है।

धर्म क्या है? धर्म की परिभाषायें दी सम्यग्दर्शन ही धर्म है। सच्ची श्रद्धा, आस्था, निष्ठा, प्रतीती, विश्वास ही धर्म है। दूसरा कहता है सम्यग्ज्ञान ही धर्म है। तीसरा सम्यक्चारित्र ही धर्म है। किन्तु आचार्य महाराज कहते हैं तीनों ही धर्म हैं, तीनों की एकता ही धर्म है। अकेले मानने से काम नहीं चलेगा, अकेले जानने से काम नहीं चलेगा और न ही अकेले करने से काम चलेगा। सही जानो, सही मानो सही करो। तुम जानते हो औषधि है उसे जानो फिर मानो फिर उसकी विधि देखो

कि कैसे सेवन करना है तब तो उसका फल प्राप्त होगा। धर्म भी इसी है। पहले धर्म को जानो कि धर्म क्या है, फिर मानो कि उसका क्या स्वरूप है, विश्वास करो, फिर उसका अनुपालन करो। तब पुनः तीनों के माध्यम से जीवन में मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

तो महानुभाव! धर्म का प्रभाव अचित्य होता है संसार में धर्म से बड़ा कुछ भी नहीं।

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानताः- प्रत्येक पदार्थ का सार अलग अलग है। संसार में छः द्रव्य हैं सबका सार अलग अलग है, किन्तु छः द्रव्यों में सारभूत द्रव्य जीवन द्रव्य है, जीव द्रव्य में सारभूत द्रव्य उसका स्वभाव है सिद्धत्व की प्राप्ति, सिद्धत्व की प्राप्ति कब होती है अरिहंतत्व की प्राप्ति हो जाये, अरिहंतत्व की प्राप्ति कब होती है जब संयम साधना करे, संयम साधना व्यक्ति कब करता है जब दीक्ष ग्रहण करे और दीक्षा कब ग्रहण करता है जब जीवन में वैराग्य हो जाये। जब वैराग्य होता है तो व्यक्ति पापों से हटता है। तो महानुभाव आचार्य सकल कीर्ति महाराज ने कहा-

वैराग्य कालंसारं भज सर्वकालंः- हे भव्य जीव! तू सर्व काल, हमेशा नित्य वैराग्य का सेवन कर। सेवन से तात्पर्य है उसे ग्रहण कर, उसके द्वारा जो फल प्राप्त होता है उसके माध्यम से जीवन को सार्थक कर यदि संसार में कोई सार है तो वह है वैराग्य। इसलिये लौकान्तिक देव पंचकल्याण के किसी भी कल्याणक में नहीं आते, वे दीक्षा के पहले जो वैराग्य होता है तो वैराग्य की अनुमोदना, अनुशंशा, प्रशंसा स्तुति करने के लिये आते हैं। तो सबसे बड़ी चीज क्या है वैराग्य।

यदि वैराग्य नहीं है तो जीवन में दुख ही दुख मिलेगा। राग दुख है वैराग्य सुख है। अरहंत भगवान के पास अनंत चतुष्टय होता है तो अनंत दर्शन की प्राप्ति कैसे होती है दर्शनावरणी कर्म के क्षय से, अनंत ज्ञान की प्राप्ति ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से, अनंत वीर्य की प्राप्ति अंतराय कर्म के क्षय से और अनंत सुख की प्राप्ति मोहनीय कर्म के क्षय से प्राप्त होती है।

तो महानुभाव जीवन में सुख, शांति का उपाय क्या है? धर्म। वह धर्म है वैराग्य पूर्ण, वीतरागता से युक्त। वीतरागता से युक्त पूर्ण धर्म है और विरागता से युक्त वह अपूर्ण धर्म है।

विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दश्श ज्ञान भण्डार समता अराधू।

आचार्य, उपाध्याय साधु तीनों वैरागी है, वीतरागी तो भगवान होते हैं। भगवान महावीर ने या किसी भी तीर्थंकर ने धर्म दो प्रकार का बताया। श्रावक धर्म और श्रमण धर्म। श्रावक धर्म क्या है सम्यक दर्शन, देवपूजा, गुरुउपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान, अष्टमूलगुण का पालन करना, ११ प्रतिमाओं का पालन करना ये

भी धर्म है। और मुनिधर्म क्या है पांच महाव्रत, पांच समीति, तीन गुप्ति, छः आवश्यक इत्यादि धर्म है। आत्मा को शुद्ध करने वाला है। यह सब क्रम है धर्म मार्ग पर चलने का। तो पहले श्रावक धर्म का पालन करे फिर मुनि धर्म का पालन करें। तो यह सब धर्म का ही स्वरूप है। कोई आपको भ्रमित करना चाहे कि ये पुद्गल की क्रिया है तो कहो कि हमें पुद्गल को ही तो दूर करना है। आत्मा से इसलिये तो ऐसी क्रिया कर रहे हैं शुद्ध आत्मा तो क्रिया करती ही नहीं। सिद्धालय में जाकर देखो कि सिद्ध क्रिया कर रहे हैं क्या। क्रिया शरीर से ही तो करनी है तो यह भी जड़ को, पुद्गल को आत्मा से अलग करने वाला है। तो महानुभाव जीवन में धर्म को स्वीकार करो, श्रद्धा के साथ, समर्पण के साथ निष्ठा के साथ, निशंकित होकर धर्म करो। जब व्यक्ति के मन में लोभ आ जाता है, तो धर्म खिसकने लगता है, लोभ पकड़ते ही, धर्म का पल्लू छोड़ देता है क्योंकि लोभ समस्त पापों का बाप है।

महानुभाव! किसी नगर में एक सेठ रहता था, यूँ तो वह बहुत बड़ा धार्मिक था, धर्मात्मा नहीं था। एक बार उसके यहाँ एक वृद्ध पुरुष आया और वह उसके द्वार पर बैठ गया। सेठ ने पूछा? बाबा जी कहाँ से आये तो वृद्ध ने कहा बेटा तीर्थयात्रा करते हुये आ रहा हूँ। सेठ ने कहा आप यहां छाया में बैठ जाओ और कहा- पानी पिओगे, वृद्ध ने पानी पिया। वह वृद्ध थोड़ी देर वहीं छाया में बैठ गया और उसे नींद आ गयी, वह सो गया। जब वह उठा और जाने लगा तो कहा बाबा आप थके हुये हो भोजन करके जाना। वृद्ध ने भोजन किया, और फिर वह जाने लगा। तो पुनः सेठ ने कहा बाबा कहाँ जा रहे हो तो वृद्ध ने कहा-

ठिकाना पूछते हो क्या, क्या हमारा क्या ठिकाना है
मिले जो झोंपड़ी आगे निशा उसमें बिताना है।

हमारा कोई ठिकाना नहीं है हम तो गृहत्यागी हैं। तो सेठ ने फिर कहा बाबा जी रात हो गयी है कल चले जाना। पुनः सुबह सुबह दादा जी जाने लगे सेठ ने उन्हें रोका कहा भोजन करके जाना पुनः इस तरह उसने दादा जी को २-४ दिन रोक लिया। जब वह दादा जी जाने लगे तो सेठ ने कहा दादा जी आप यहीं ठहर जाइये। मेरे परिवार में मैं और मेरा बेटा है जो आपकी दिन रात सेवा करेंगे। मेरे घर में कोई वृद्ध नहीं है जिसकी मैं सेवा कर सकूँ मैं आपकी सेवा करूँगा आप मेरे पास रुक जाइये। दादा जी रुक गये। दादा जी की सेवा होने लगी। १ दिन, ४ दिन, १५ दिन करते करते लगभग एक साल निकल गया। और दादा जी आराम से रहने लगे।

एक दिन सेठ के द्वार पर एक वृद्ध अम्मा जी आयीं। हारी थकी हुयीं थीं। सेठ ने देखा अम्मा जी कहाँ से आयीं? बेटा ऐसे ही हम चल रहे हैं चले आ

रहे हैं। सेठ ने कहा अम्मा जी बैठो पानी पिओगी। अम्मा ने कहा नहीं सेठ ने कहा आप थकी हारी हुयी हैं पानी पीलो। और अपने बेटे को पानी लाने के लिये कहा। बेटा गिलास में पानी लेकर आया और अम्मा जी को देने लगा, तो अम्मा जी ने कहा बेटा मैं किसी के बर्तन में भोजन पानी ग्रहण नहीं करती। उन्होंने अपने झोले में से कटोरा निकाला, कटोरा सोने का था। उसमें पानी पिया और कटोरे को फेंक दिया। वह बैठी रही बेटे ने फिर कहा पानी पीलो अम्मा ने कहा नहीं बहुत जोर दिया तो अम्मा जी ने पुनः अपना झोला खोला और एक सोना का कटोरा निकाला, पानी पिया और फेंक दिया। अम्मा जी जाने लगी तो सेठ ने कहा अम्मा जी भोजन करके जाना अम्मा जी ने भोजन किया। सेठ ने अम्मा जी को भी रोक लिया। २-४ दिन बीते। इधर दादा जी की भी सेवा हो रही थी, किन्तु कुछ कमी आ गयी। अम्मा जी को दिन में ६ बार भोजन २० बार पानी को पूछते और बाबा जी जो २ बार भोजन ६ बार पानी पीते थे तो उसमें भी कमी करने लगे। किसलिये स्वर्ण कटोरे के कारण इस प्रकार सेठ ने बाबा जी को घर से निकाल दिया और कहा दो साल से आपकी सेवा कर रहा हूँ, आपका नौकर हूँ क्या अपशब्द कहे और दादा जी को घर से निकाल दिया। दादा जी को बुरा लगा किन्तु चेहरे पर बिना शिकन लाये वे घर से चले गये। इधर सेठ व उसका बेटा अम्मा जी की खूब सेवा करने लगे अम्मा जी ये खाओ ये पीओ आदि। और फिर क्या अम्मा जी खड़ी हुयीं और दादा जी के पीछे पीछे चलने लगी। सेठ ने कहा अम्मा जी ये क्या हमने आप से कुछ नहीं कहा आप क्यों चल दीं। अम्मा जी ने कहा बेटा जहाँ ये दादा जी रहते हैं न वहीं मैं रहती हूँ। जिस घर से दादा जी चले जाते हैं उस घर से दादी भी चली जाती है। मतलब! मतलब यह कि तू जान नहीं पाया था कि ये दादा जी नहीं धर्म हैं मैं दादी नहीं मैं लक्ष्मी हूँ। तो जहाँ धर्म रहता है वहाँ लक्ष्मी स्वयं आकर डेरा डाल लेती है।

तो महानुभाव! यदि आपकी कीमत पैसे ने बढ़ाई तो तुम्हारी कीमत नहीं पैसे की कीमत है। अपनी कीमत अपनी आत्मा से बढ़ाओ अपने व्यक्तित्व से बढ़ाओ। आत्मा के गुणों के विकास से बढ़ाओ। यदि आपको पैसे से ही अपनी कीमत बढ़ानी है तो पैसा भी धर्म से आयेगा। यदि आपको प्रतिष्ठा चाहिये तो वह भी धर्म से मिलेगी, यश, आरोग्य, स्वजन, परजन आदि धर्म से मिलेंगे। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो धर्म से न मिले। तो महानुभाव! यहाँ-वहाँ भटकने की आवश्यकता नहीं है और अपना हाथ झटकने की आवश्यकता नहीं है, एक दूसरे को पटकने की भी आवश्यकता नहीं है यदि आवश्यकता है तो धर्म का पल्लू पकडने की आवश्यकता है, जब तक शरीर में प्राण है तब तक धर्म का पल्लू छोड़ना नहीं है। धर्म को छोड़ा नहीं जा सकता। शरीर तो छोड़ा जा सकता है,

दुकान-मकान सब छोडे जा सकते हैं परन्तु जीवन में धर्म नहीं छोड़ा जा सकता।

धर्म वह चुम्बक है जहाँ सुख शांति सब मिलते हैं

"धर्म बड़ो संसार में"

महानुभाव!

आप उसी धर्म को स्वीकार करें। तीर्थंकर छोटे है, धर्म बड़ा है, इस धर्म ने ही भगवान को भगवान बनाया है धर्म के माध्यम से ही अनंत आत्मायें भगवान बनी है। तो धर्म ही शाश्वत है, तीनों लोक का रक्षक है, सब कुछ देने वाला है, उसी धर्म को आप प्राप्त करो जिससे आपका भी कल्याण हो सके। इन सभी भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

"शांतिनाथ भगवान की जय"

सुख कहाँ

महानुभाव!

धर्म का प्रारम्भ जीवन में जब भी होता है, आस्था के द्वारा होता है। जब आस्था सम्यक् लगती है, तो ज्ञान भी सम्यक् हो जाता है और जीवन की समस्त क्रियायें सम्यग् होने लगती हैं। यदि कोई ढाँचा ही गलत हो तो ढाँचे के आधार पर बनाया गया महल गलत ही सिद्ध होगा। प्रायःकर कुछ व्यक्ति संसार में ऐसे भी होते हैं, जिन्होंने जीवन में वनजसपद तो गलत खींच है और पुनः चित्र बनाते बनाते उस चित्र को सही करने का प्रयास कर रहे हैं, जिस मकान की नींव गलत है, दीवार गलत है उसे हाथ से दवाकर ठीक नहीं किया जा सकता।

जिस व्यक्ति ने अपने जीवन का उद्देश्य ही गलत बना रखा है वह व्यक्ति कभी सम्यक् लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जो व्यक्ति दुखों के कारणों को पकडकर के सुख प्रापत करना चाहता है, ऐसा व्यक्ति स्वयं से ही खिलवाड़ कर रहा है, स्वयं को ठग रहा है, स्वयं को ही धोका दे रहा है। उसे चाहिये कि वह अपने मार्ग को और मंजिल को तय कर ले। जिस प्रकार बिना मंजिल तय किये जो व्यक्ति उद्देश्य पूरा करने के लिये चल देता है वह मूर्ख कहलाता है, यह अपने आप को भ्रमित करना है। यदि फूलों को सूँघने से सुख मिले तो फूल बेचने वाला सुखी होना चाहिये? संसार के पदार्थ सुख शांति नहीं दे सकते, इनमें सुख शांति है ही नहीं। गंधक में शक्कर का स्वाद नहीं आ सकता, शक्कर में मिर्च का स्वाद नहीं आ सकता यह विवेक, बुद्धि ज्ञान जिसके पास है वह जीवन के चरमसाध्य लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। सुख शांति तो हमारे अंतरंग में है, हम बाहर खोजते रहते हैं, जब तक अंदर जाने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक सुख शांति नहीं मिलेगी।

एक गोल वृत्त है। एक चींटी उस गोल वृत्त पर चक्कर लगा रही है बीच में शक्कर का दाना रखा है, शक्कर के दाने की सुगंध उसे आ रही है वह चींटी उस वृत्त के चक्कर लगाते लगाते थक जाती है और सोच रही है कि शक्कर तो यही है पर पहुँच नहीं पा रही है किन्तु वह उस परिधि की जो रेखा है उसे छोड नहीं रही है। यही दशा हमारी चल रही है, हम भी परिधि पर चक्कर लगा रहे हैं, स्पर्शनइन्द्रिय, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन पंचइन्द्रियों के विषयों पर, चारो कषायों की परिधि पर चक्कर लगा रहे हैं, किन्तु हम परिधि को छोडकर केन्द्र की ओर यात्रा करना नहीं चाह रहे हैं। वह चींटी उस परिधि के एक दो हजार, खालों चक्कर लगाये किन्तु शक्कर के दाने तक नहीं पहुँच सकती।

कई बार आश्चर्य होता है, ये सोचकर कि हम अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं, अभी तक सुख शांति को प्राप्त क्यों नहीं किया? जब कि सुख

शांति हमारे पास है।

बात यह है कि सुख शांति को बाहर सब जगह देखा किन्तु (अपने अंदर) जहाँ खूवी थी वहाँ नहीं देखा।

महानुभाव! एक महिला जिसने एक सोने की बिन्दी बनवायी। वह उसे बनवाकर बहुत प्रफुल्लित हुयी, कि जीवन में मैंने पहली बार सोने की बिंदी लगायी है, और वह बार बार स्वयं को देखे।

जब वह स्नान करने गयी तो उसने वह बिंदी कहीं गुम न हो जाये इसलिए अपनी गर्दन पर लगा ली। जब वह स्नान करने के बाद, श्रृंगार आदि करके तैयार होने लगी तो उसने देखा कि उसके माथे पर बिंदी नहीं दिखाई दे रही है, वह उसे सब जगह ढूंढ़ने लगी उसने पूरे घर में वह बिंदी ढूंढ़ी किन्तु कहीं नही मिली बड़ी दुखी हुयी, अभी तक तो उस बिंदी को किसी ने देखा भी नहीं था, कोई देख लेता तो कम से कम प्रशंसा तो करता, मैं संतुष्ट हो जाती बहुत दुखी हुयी। उसको ज्ञात हुआ कि निकट में कोई महात्मा जी पधारे हैं, वे बता देते हैं, दिव्य ज्ञानी हैं, निमित्त ज्ञानी हैं, तो महात्मा जी के पास चलना चाहिये। वह महिला महात्मा जी के पास जाती है। महात्मा जी मेरी बिंदी गुम हो गयी है, महातमा जी बोले कैसी बिंदी थी? वह बोली सोने की बिंदी थी, गुम गयी। महात्मा जी ने कहा अच्छा ये बताओं कि तुमने कहाँ कहाँ ढूँढ़ा? वह बोली पूरा घर देख लिया, एक एक बक्सा देख लिया पर बिंदी कहीं भी नहीं मिली। महात्मा जी बोले तुम्हारी बिंदी मिल सकती है उन्होंने एक दर्पण लेकर उस महिला को दिखाया, महिला खुशी से चिल्ला पड़ी अरे! मेरी बिंदी तो मिल गयी, और दर्पण में पकड़ने को तैयार हुई, महात्मा जी ने कहा यहां तुम्हारी बिंदी नहीं है, ये तुम्हारी बिंदी नहीं है, मैंने दर्पण अपने झोले से निकाला है, तो ये बिंदी मेरी है, तुम्हारी नहीं। महिला बोली नहीं महात्मा जी ये मेरी बिंदी है, आप कहाँ से लाये? ये तो मेरी बिंदी है, वो दर्पण को छीनने लगी।

किन्तु महानुभाव! सही मायने में बताओ क्या दर्पण में बिन्दी है? क्या बिन्दी महात्मा के पास है? नहीं। बिंदी तो उसी के पास थी, बस दर्पण दिखा दिया बिंदी कहाँ है गर्दन पर। तो उस महिला को तो बिन्दी मिल गयी। तो महानुभाव!

आपको भी आपकी सही जिन्दगी मिल जाये, दर्पण साधु दिखा रहे हैं। और उनके पास देने लेने को रखा ही क्या है–

हमारे पास देने को रखा भी क्या है?

हाँ गर कोई चाहे तो जीने की अदा ले जाये।

कि संसार में सुख शांति पूर्वक कैसे जिया जाता है। साधु लोग अशांतियों को बुलाकर भी शांति से जीते हैं वे दुखों को बुलाकर सुख से जीते हैं।

सुख पाने के लिये दुखी हैं, चैन से जीने के लिये बैचेन हैं। तडप रहा है। देखो कितनी उल्टी बाते हैं। साधु की और श्रावक की।

महानुभाव! साधु पुरुष केवल दर्पण का काम करते हैं। येन केन प्रकारेण व्यक्ति की दृष्टि तो खुले, व्यक्ति सही को सही देख तो ले, सही जान तो ले, मान तो ले। देखने जानने पर उसकी प्रवृत्ति सही हो सकती है।

महानुभाव! जब तक सही को सही नहीं मानेंगे कांच को पकड़ कर रत्न मानेंगे, जहर का गिलास पीते रहेंगे और कहेंगे अमृत पी रहा हूँ, पापों को करते रहेंगे कहेंगे मैं पुण्य क्रिया कर रहा हूँ। दुखों का कार्य करते रहेंगे और सोचेंगे मैं सुखी हो जाऊँगा। सुख का जो मार्ग तुमने चुना है वह सुख का मार्ग नहीं है, वह दुख का मार्ग है। आप सोचो कि किसी स्त्री को पाकर सुख है तो देवों की ३२ देवांगनायें होती हैं, उन्हें सुखी होना चाहिये, यदि कहो कि बहुत धन, वैभव प्राप्त होने पर सुखी हो तो चक्रवर्ती आदि ८ खण्ड के स्वामी भी सुखी होने चाहिये। किन्तु वे भी मुत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इन सब में सुख है ही नहीं। यदि पुद्गल का ढेर लगाकर सुखी हो जाये तो सुखी नहीं हो सकता, जब तक व्यक्ति अंदर से बड़ा न हो जाये, कर्मों का क्षय न हो जाये, तब तक दुख का क्षय कैसे होगा?

एक व्यक्ति नदी के किनारे बैठा है, बार बार नदी में देख रहा है एक टक से। वह बार बार डुबकी लगाता है फिर निकल आता है, लगाता है फिर निकल आता है। वह बार-बार उस नदी में डुबकी लगाता है। एक महात्मा जी वहाँ से निकले, और बोले क्या बात है? वह बोला कुछ नहीं महात्मा जी आप तो यहाँ से जाओ। महात्मा जी बोले बेटा डुबकी लगाता रहेगा जिंदगी भर पायेगा नहीं। अगर मुझे नहीं बतायेगा। क्योंकि मैं तेरी हरकत बहुत देर से देख रहा हूँ तुम बहुत देर से हाथ फैलाकर पकडने के लिये डुबकी लगा रहे हो, वो चीज पकड में नहीं आ रही, और मैं समझ रहा हूँ तू मुझसे छिपा रहा है, गुरु से छिपा रहा है-

गुरु से शिष्य की कौन सी बात अनजानी है।
सागर जानता है बूंद में कितना पानी है।।

कहने का आशय यह है कि महात्मा ने उसे टोका बता दे वह बोला नहीं महात्मा जी मैं प्राप्त करके ही रहूँगा। महात्मा जी बोले जीवन में प्राप्त नहीं कर पायेगा। वह व्यक्ति बोला गर प्राप्त कर लिया तो। महात्मा जी कहकर चले गये। वह व्यक्ति प्रतिदिन आता, डुबकी लगाता, वह चमकता हुआ पदार्थ पकडने की कोशिश करता, किन्तु पकड़ नहीं पाया। लौटकर फिर महात्मा जी आये और बोले मिल गया। वह बोला नहीं। महात्मा जी आप ठीक कहते थे। महात्मा जी ने कहा तू उस हीरे के पीछे पड़ा है न। हीरा जहाँ दिख रहा है वहाँ है नहीं जहाँ है वहाँ तू देख नहीं रहा है। वह हीरा नहीं उसकी परछाँई है। हीरा तो वहाँ उस वृक्ष के ऊपर रखा

है मेरी झोंपड़ी के पास, सूर्य की रोशनी उस पर पड़ती है तो वहाँ उसकी परछाँई पड़ती है, वह हीरा है ही नहीं।

कहीं ऐसा तो नहीं कि हम भी परछाँई के पीछे भाग रहे हों, सुख कहीं और हो हम कहीं और उसी परछाँई को पकड़ रहे हों। शायद ऐसा ही है-

दर्पण में मुख, संसार में सुख, है नहीं, दिखता है।

महाराज! बात समझ नहीं आई जो है नहीं वह दिखेगी कैसे। यही तो माया है, यही तो मोह है मोहजाल यही कहलता है कि आपकी बुद्धि भ्रमितकर दी, जो दिखता है वो है नहीं। दुख को सुख और सुख को दुख मानता है मिथ्यादृष्टि। कैसे श्वानवत्

जैसे कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है वह सोचता है कि इसमें से खून निकल रहा है, जब कि खून उसके जबडे में से निकल रहा है वह खूब खुश हो रहा है उस सूखी हड्डी को चूसे जा रहा है। किन्तु बाद में पछताता है जब घाव हो जाता है।

ऐसे ही संसारी प्राणी विषयों का सेवन करता है, उसे आनंद आ रहा है, अपनी शक्ति खर्च करता है पुनः दुखी और हताश होता है।

चहुँगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
संसार में तो दुख ही दुख है, सुख कहीं है ही नहीं।

ये बताओ अग्नि में कहीं शीतलता है क्या? शीतलता पानी का गुण है, और ऊष्णता अग्नि का गुण है। पानी में ऊष्णता नहीं मिलेगी, अग्नि में शीतलता नहीं मिलेगी। ऐसे ही संसार में सुख नहीं है।

जो संसार विषय सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते, संयम सों अनुरागे।।

यदि संसार में सुख होता तो तीर्थकर प्रभु संसार को त्याग कर दीक्षा क्यों लेते, जंगल में उपवास क्यों करते, महल छोड़कर क्यों अपनी आत्मा में निवास करते। इससे सिद्ध होता है, संसार में सुख नहीं हे। सुख तो हमारी आत्मा में है। तो महानुभाव! कहने का आशय यह है कि हमें अपनी आत्मा की ओर दृष्टिपात करना है। सही स्वरूप को जान लें, मान लें। पहले जानना जरूरी है। जानना शब्दों में होता है, और मानना अंतरंग से होता है। पहले शास्त्रों के माध्यम से जाना, गुरुओं के माध्यम से जाना उनके माध्यम से हमारी मोह की नींद टूट गयी, हमें लगा हमारी आत्मा शुद्ध है, सिद्धों के समान है, बिल्कुल अमूर्तिक है, किन्तु आज शरीरके बन्धन में पड़ी है इस माँस चमडे की गंदगी में पड़ी है। ऐसी निर्मल आत्मा ज्ञाता, दृष्टा आत्मा को जाने क्या हो गया, मेरी ही भूल है, गलती मेरी है मैंने पुद्गल से राग किया, उससे दोस्ताना करने का फल

यह हुआ कि उसने अपना फल दिखाया, यदि दुष्ट से मित्रता करोगे तो वह अपना फल जरूर देगा। महानुभाव! जैसी संगति करोगे, वैसा फल मिलता है।

जुआरी से करोगे गर दोस्ताना जुआरी समझेगा तुमको जमाना।
बैठोगे रोज रोज अग्नि जलाकर, उठोगे एक रोज कपडे जलाकर।।

महानुभावः-

आपने कर्मों से दोस्ताना किया है। आपने कभी सिद्धों से दोस्ती नहीं की, कभी अरिहंतो, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं से दोस्ती नहीं की, कभी जिनवाणी से दोस्ती नहीं की। राग भी किया है तो रागी से किया, विषयानुरागी से किया है, यदि राग तुम्हें करना भी है तो वीतरागी से करो, विरागी से करो, तो तुम भी वीतरागी और विरागी बन जाओगे।

महानुभावः- कर्मों से राग करने का आशय यह हुआ कि कर्मों ने अपना फल उन्होंने दिया, कर्म अन्यायी नहीं अन्यायी हैं।

महानुभाव! कहने का आशय यही था, कि आप लोग पहले सही मार्ग का प्रकाश की आवश्यकता है, यदि सूर्य का प्रकाश नहीं मिल रहा है तो चन्द्रमा की चाँदनी में मार्ग चयन कर लो, यदि वह भी नहीं मिल रही हो तो दीपक का प्रकाश प्राप्त कर चयन कर लो, यदि वह भी नहीं मिल रहा हो तो एक मिनट के लिये टार्च जलाकर चयन कर लो वह भी नहीं मिल रहा है तो अमावस्या की रात है अंधेरा है, बारिश हो रही है, आपको पता है मार्ग यही है तो बिजली की चमक को पाकर ही अपना मार्ग पकड़ लो। जो जाग जाता है वह जल्दी से मोक्ष मार्ग में भाग जाता है, और जो जाग नहीं पाता वह संसार में पड़ा पड़ा पछताता है।

जो सोवत है सो खोवत है।

गुरु जगाने का काम करते हैं, अब तुम जगो न जगो। गुरु आवाज लगाते हैं। साधु पुरुष समाज में आते हैं वे जाग्रत करने के लिये आते हैं। चाहे आज करो, कल करो, कभी करो, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के माध्यम से कल्याण करो। धर्म स्नेही बन्धुओं-

अभी आपके हाथ में छोटी सी टार्च आ जाये तो बहुत बडे प्रकाश का ख्याल मत करना, कि मैं बहुत शास्त्रों का अध्ययन कर लूँगा मैं अपना कल्याण करुँगा। अरे! इतनी सी बात समझ में आ जाये कि रात्रि में भोजन करने वाला नरक जाता है, आज से रात्रि भोजन का त्याग, जिमीकंद खाने वाला नरक जाता है, आज से जिमिकंद का त्याग। जैसे सुन लो तुंरत ही त्याग कर देना चाहिये।

वर्णी जी जैन कुल से उत्पन्न नहीं हुये थे उन्होंने पद्मपुराण का स्वाध्याय सुन लिया कि रात्रि भोजन करने वाला नरक जाता है, और रात्रि भोजन त्याग करने से ज्ञान से संयम नहीं संयम से उत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्यो

ज्यों उत्कृष्ट संयम साधना करते जाओगे त्यों त्यों ज्ञान की वृद्धि होती चली जायेगी। और ज्यों ज्यों ज्ञान की वृद्धि होगी, चारित्र में निर्मलता आती जायेगी। महानुभाव!

मनः पर्यय ज्ञान संयम को प्राप्त करने पर होता है, सर्वाधिक, परमावधि, केवलज्ञान भी संयम को प्राप्त करने पर होता है, छोटी सी टार्च भी सम्मेद शिखर की यात्रा करा सकती है यदि दिन के उजाले का इंतजार करोगे तो धूप में तपन तुम्हें ही होगी, अर्थात् थोड़ा भी ज्ञान है, उसे गुनो, बुनो। भगवान का ध्यान, चिंतवन करो, तो आपके अंदर अज्ञान, असंयम का अंधकार नष्ट हो जायेगा, आपके जीवन में सुप्रभात हो जायेगा, कल्याण की किरण जागृत हो जायेगी और आप अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकेंगे और आप भी सुखी हो जायेंगे

आचार्य श्री वसुनंदी जी

धर्म स्नेही, सत् श्रद्धालु यहाँ पर विराजमान मेरठ महानगर के सभी गणमान्य प्रतिष्ठित अहिंसा प्रेमी नागरिकों, अहिंसा में आस्था रखने वाले सभी श्रद्धालु जनों, भारत भूमि विश्व में वह पवित्रतम भूमि है, जिस भूमि पर तीर्थंकरों ने संतों ने, अरिहंतों ने भगवंतों ने जन्म लेकर और तपस्या करके इस भूमि को पवित्र किया। भारत एक ऐसा देश है जिसे विश्व का गुरु कहा जाता है क्योंकि भारत में ही आध्यात्मिक विद्या का सूत्र पात हुआ। भारत में ही संतो अरिहंतों ने अपनी दिव्य देशना के माध्यम से अहिंसा का उद्घोष किया वह स्थान मूल स्थान भारत है। भारत का आशय यह है कि जो सभी प्राणियों के भरण और पोषण का ख्याल रखे। इस युग के आदि में होने वाले आदि ब्रह्म ऋषभ देव स्वामी के पुत्र भरत, जिनके नाम से इस देश का नाम भारत उद्घोषित हुआ उन्होंने यह नारा दिया कि भारत वह है जो खाली को भरता है, जो सबको निभाता है यह नाम सबको भाता है, महानुभाव भारत की संस्कृति ऋषि और कृषि प्रधान रही है। ऋषभ देव भगवान ने ऋषि करने का उपदेश दिया और ऋषभ देव भगवान ने बाद में ऋषि बनने की परम्परा को जीवित किया। महानुभाव संसार का प्रत्येक प्राणी सुख और शांति की वांछा को रखता है। संस्कृति और सभ्यता के सांचे में ढला हुआ मानव स्वयं भी शांति को प्राप्त करने का अधिकारी होता है और विश्व में शांति स्थापित करने का अधिकारी बन सकता है। जो व्यक्ति संस्कृति और सभ्यता से बहुत दूर है। वह व्यक्ति न तो स्वयं ही अपने जीवन में सुख और शांति को प्राप्त कर सकता है और न विश्व को ही सुख और शांति का सूत्र दे सकता है। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो सुख-शांति नहीं चाहता हो , चाहे वह छोटा बालक है, चाहे वयोवृद्ध है, चाहे वह युवा है, चाहे वह प्रौढ़ है, चाहे वह हिन्दू हो, चाहे वह मुस्लिम हो, चाहे वह सिक्ख हो, चाहे वह ईसाई हो, चाहे वह जैन हो कोई भी मजहब का मानने वाला हो, प्रत्येक व्यक्ति सुख-शांति को चाहता है और इस बात को प्रायः करके सभी स्वीकार करते है कि जीवन में सुख और शांति जब भी प्राप्त होगी धर्म के माध्यम से प्राप्त होगी इस बात को प्रायः करके सभी लोग स्वीकार करते हैं। महानुभाव वह धर्म सभी व्यक्ति अलग अलग रूप में स्वीकार करते हैं धर्म का कोई भी स्वरूप स्वीकार किया जाये यदि धर्म सच्चे हृदय से किया जाता है पवित्र हृदय से किया जाता है, तो धर्म का फल नियम से प्राप्त होता है जब धर्म अंतरंग से न करके व्यक्ति केवल शरीर से धर्म की क्रिया करता है उस समय वह धर्म के फल को प्राप्त नहीं कर पाता। आचार्य ने लिखा है- ''धर्म सदैव कर्तव्यों येन जीव सुखायते'' प्रत्येक प्राणी को सदैव धर्म का अनुपालन करना चाहिये इसके

द्वारा प्रत्येक जीव सुख और शांति को प्राप्त कर सकता है। आबाल वृद्ध, बाल गोपाल सभी व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्म एक औषधि के समान है। जैसे किसी व्यक्ति को रोग हो जाये तो वह औषधि का सेवन करता है और औषधि के माध्यम से निरोग अवस्था को प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार संसार का प्रत्येक प्राणी दुखी है और दुख रूपी रोग प्रत्येक आत्मा के साथ लगा हुआ है उस दुख रूपी रोग को दूर करने का एक ही उपाय है वह है धर्म, धर्म के माध्यम से व्यक्ति सुख और शांति को प्राप्त कर सकता है, धर्म के माध्यम से दुखों को नष्ट कर सकता है आचार्यो ने लिखा है ''जन्तु मुधणते धर्मः पतित दुख संकटे'' दुख और संकट में पतित व्यक्ति का यदि कोई उद्धार करने वाला होता है तो वे न माता पिता होते हैं, न भाई बन्धु होते हैं, न मित्र स्वजन, परिजन होते हैं, यदि प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला, दुख और संकट में साथ देने वाला होता है, वह धर्म होता है, धर्म व्यक्ति की हर जगह रक्षा करने वाला है, अब बात ये है धर्म का स्वरूप क्या हो? कोई व्यक्ति कहता है धर्म अहिंसा है, कोई व्यक्ति कहता है धर्म का स्वरूप दया है, कोई व्यक्ति कहता है धर्म का स्वरूप करुणा मय है, ये सभी धर्म के एक एक अंग है, यदि सभी अंगो को इकट्ठा कर लिया जाये तो एक अखंड धर्म की प्राप्ति हो सकती है। महानुभाव आज उन भावनाओं में अंतर आता जा रहा है, व्यक्ति उस भावना से च्युत होकर के हिंसा में प्रवृत्ति कर रहा है, इसलिये व्यक्ति आज शायद भूतकाल की अपेक्षा से ज्यादा दुखी है, इतना दुखी पहले रहा हो कह नहीं सकते तो महानुभाव अहिंसा धर्म कहो चाहे करुणा कहो, दया कहो, यह धर्म का मूल है। जिस व्यक्ति के मन में अहिंसा का वास होता है तब तक वह व्यक्ति अपने मारने वाले को भी मारता नहीं है रक्षा करता है जब मन में से अहिंसा करुणा दया धर्म निकल जाता है तो व्यक्ति पुनः रक्षक भक्षक बन जाता है अपनी रक्षा करने वाले का भी घात कर देता है। महानुभाव तो वह धर्म औषधि की तरह से है, उस धर्म को जातियों में, वर्गों में, सम्प्रदायों में बाँटने की आवश्यकता नहीं है। वह धर्म प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है वह स्वाभाव कभी विभाव रूप से नहीं हो सकता, प्रत्येक प्राणी का एक ही धर्म है वह है मानव धर्म उसे अलग अलग रूप और नाम देने की आवश्यकता नहीं है। जैसे किसी व्यक्ति को बुखार आ जाये तो वह बुखार के लिये डॉक्टर के पास जाता है, डॉक्टर इंजेक्शन लगा देता है और गोली आदि दे देता है। डॉक्टर केवल रोग को देखता है वह यह नहीं पूछता कि आपका नाम क्या है, नाम और जाति की औषधि नहीं है, यदि आपको जुखाम हो गया है तो वह डॉक्टर आपको विक्स लगाने की सलाह देता है, आप औषधि का सेवन करते हैं आपका रोग ठीक हो जाता है। जब आपको प्यास लगती है तो आप किसी भी टंकी पर जाकर पानी पी लेते हैं, किसी भी कुँए से निकाल कर पानी पी

लेते हें, कहीं हेंडपंप पर जाकर पानी पी लेते हैं, किसी नदी प्याऊ पर जाकर पानी पी लेते हैं, किसी नदी और सागर में जाकर पानी पी लेते हैं, किसी झरने और बावड़ी से पानी पी लेते हैं, और वह पानी आपकी प्यास को बुझा देता हैं, कभी पानी ने यह नहीं पूछा कि तुम ब्राह्मण हो कि तुम बुद्ध हो, कि तुम सिक्ख हो, कि तुम ईसाई हो, कि तुम जैन हो, कि इस्लाम धर्म को मानने वाले मुसलमान हो, तुम कौन हो? पानी ने कभी जाति नहीं पूछी, पानी ने प्रत्येक प्राणी की प्यास को बुझाया, यहाँ तक कि मनुष्य ही नहीं उस पानी का पान तिर्यंचों ने किया, पशु पक्षियों ने किया, आपने फलों को खाया, मिष्ठान खाये दूध पिया और आपका पेट भर गया आपकी क्षुधा शांत हो गई, कभी अन्न ने फलों ने, आपसे यह नही पूछा कि पहले ये बताओं कि आप कौन सी जाति के हैं, उसका जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है तुम्हें भूख लगी है तो भोजन करने पर भूख शांत हो जाती है इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति धूप में तपता हुआ आया और छाया में आकर बैठ गया तभी छाया ने आकर के ये नहीं पूछा तुमसे पहले ये बताओं तुम कौन से धर्म के मानने वाले हो वहाँ धर्म और जाति पूछने की आवश्यकता नहीं तुम धूप से तपे हुये हो छाया में आकर के बैठ जाओं तुम्हें छाया मिलेगी। इसी प्रकार सूर्य ने तुमसे ये नहीं पूछा तुम कौन सी जाति के हो, जाति को पूछ करके मुझे किस किसके घर में प्रकाश देना है और कहाँ-कहाँ पर अंधकार करना है ऐसा पक्षपात सूर्य ने नहीं किया, ऐसा पक्षपात चंद्रमा ने नहीं किया ऐसा पक्षपात चाँदनी ने नहीं किया, ऐसा पक्षपात किसी छोटे से दीपक ने भी नहीं किया, यहाँ तक की मोमबत्ती भी जलाओं कोई भी जलाये उसी के घर में प्रकाश हो जाये। महानुभाव! इसी प्रकार पुष्पों ने कभी पक्षपात नहीं किया कि मैं किसी अमुक जाति को अपन खुशबू दूँगा सबके लिये खुशबू देता है। तो ये मानव धर्म के संबंध में पक्षपात क्यों करने लगता है क्या यह समग्र को जानना नहीं चाहता है, क्या यह अखंड को प्रापत नहीं करना चाहता है, ये नाना प्रकार के तर्क कुतर्क क्यों ढूँढ़ लेता है महानुभाव! धर्म क्या है? चाहे शब्दों में कुछ भी कहों मैं आपको अल्प शवों में बताना चाहता हूँ शायद धर्म की परिभाषा से आप भी सहमत हो कहीं कहाँ धर्म क्या है तो दया धर्म कहा, करुणा धर्म कहा, कहीं अहिंसा धर्म कहा, कहीं परोपकार को धर्म कहा और जैनों से पूछेंगे ''देसण मूलो धम्मो''

धर्म का मूल तो दर्शन है कोई कहेगा ''चारित्रं खलु धम्मो'' चारित्र धर्म का मूल है कोई कहेगा ''सम्मं णाणं धम्मो'' सम्यग्ज्ञान धर्म है, कही कहेंगे। धम्म इसण सत्य समाना'' सत्य के समान कोई धर्म नहीं। कोई कहेगा पांच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये धर्म है सब अलग अलग व्याख्या करते जायेगे तो महानुभाव! व्यक्ति इनमें उलझ जाता है आखिर में धर्म है क्या?

क्या शब्दों की पोटली का नाम धर्म है? या मान्यता का नाम धर्म है, धर्म आखिर में क्या? गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा ''कर्तव्य मेव धर्म'' जो व्यक्ति जिस आसन पर आसीन है, जिस पद पर आसीन है उस पद पर आसीन रहते हुये जो जो कर्तव्य है उन कर्तव्यों का पालन करेगा उस व्यक्ति का धर्म है इसमें भी थोड़ी भ्रान्ति पैदा होने लगी एक व्यक्ति कहता है अब तो मेरा धर्म सेवा करना ही रह गया है क्या मैं जिंदगी भर सेवा ही करत रहूँगा दूसरा गद्दी पर बैठा है कहता है बस मैं तो बस अपनी गद्दी पर बैठा हूँ विधायक बन गया, सांसद बन गया, प्राइ मिनिस्टर बन गया मेरा धर्म तो दूसरों की सेवा प्राप्त कराना है मैं तो गद्दी पर बैठूँगा बड़ी भ्रान्ति पैदा होने लगी, एक अधीनस्थ है, एक स्वामित्व से युक्त है तो वहाँ पर दोनों में भेद खड़ा हो गया, क्या धर्म दोनों में भेद करने वाला है, बड़ी मुसीबत हो गई तो पुनः एक नई व्यवस्था निकल करके आई ''वथ्थु सहावो धम्मो'' धर्म वह है जो जिस वस्तु का स्वभाव है, वह क्या स्वभाव है स्वभाव को नहीं जानते, उसके बारे में बताओ, जैसे नीम का स्वभाव कडवा होता है शक्कर का स्वभाव मीठा होता है, अग्नि का स्वभाव जगाना होता है, जल का स्वभाव शीतलता होता है, ऐसे ही प्राणी मात्र का स्वभाव वह अहिंसा, करुणा, दया है फिर भी सन्तुष्टि नहीं हुई तो पुनः समस्त परिभाषाओं का निचोड़ निकाला।

एक राजा से किसी मंत्री ने कहा महाराज आप धर्म किया करो, बिना धर्म के कल्याण होने वाला नहीं है, बिना धर्म के सुख शांति नहीं मिलेगी, आपका जब तक पुण्य का उदय चल रहा है तब तक राज्य है और पाप का उदय आ जाये तो रंक भी बन सकते हों इसलिये पुण्य करना चाहिये, धर्म करना चाहिये, राजा ने हाथ जोड करके कहा, सज्जनों आप कहते तो सही हो, किन्तु वह धर्म क्या है पहले ये बताओं उसके बाद धर्म को स्वीकार करूँगा, जब तक मैंने धर्म को जाना नहीं है तब तक मैं अंधविश्वासी बन कर धर्म को स्वीकार नहीं करूँगा मंत्रियों ने नगर में घोषणा करवा दी, जितने भी धर्माचार्य हों वे सभी धर्म के बारे में व्याख्या लिखे जिससे हमारे राजा साहब समझ सकें कि धर्म क्या है? संतों ने महंतों ने ऋषियों ने, मुनियों ने धर्म की बहुत व्याख्या की और व्याख्या लिख लिख करके इतने मोटे मोटे ग्रंथ लिख दिये और एक नहीं पचासों ग्रंथ लिख दिये और बडे बडे शास्त्रों के बैग भर गये, बैगों को रख करके गाडियों में लेकर के राजा के दरबार में उपस्थित हो गये। राजा ने पूछा ये सब क्या मामला है भई मंत्रियों ने कहा महाराज आपने कहा था कि धर्म की व्याख्या क्या है तो ये सब धर्म की व्याख्या लिखी है, उसने दूर से हाथ जोडे मुझे ऐसा धर्म न चाहिये १०० जिन्दगी में इस धर्म की पुस्तकों को न पढ़ पाऊँगा। संक्षेप में बताओ धर्म क्या है? मंत्रियों ने सभी संतों से महंतो से ऋषियों से हाथ जोड़कर निवेदन किया पूज्यवर आप धर्माचार्य हैं धर्म के

मर्म को जानने वाले हैं, आप धर्म की व्याख्या संक्षेप में लिखे तो ठीक है उन्होंने सन्क्षिप्त रूप करने का प्रयास किया और वह रूप ऐसा किया कि ग्रंथो को एक एक बैग में भर कर ले आये मानो ५० प्रकार के धर्माचार्य थे वे ५० बैग लेकर के आ गये, राजा ने देखा पुनः हाथ जोडे मैं इतना बड़ा धर्म नहीं कर सकता मुझे संक्षेप में बताओं, मंत्रियों ने पुनः कहा धर्माचार्यों पूज्यवर आपसे पुनः निवेदन है कि धर्म का और संक्षिप्त रूप बताओं तो पुनः धर्माचार्य धर्म का सन्क्षिप्त रूप लिख करके लाये एक एक किताब उन्होंने लिखी सभी किताब दो तीन बैगों में आ गई राजा ने पुनः पूछा कि धर्म का सन्क्षिप्ती करण हो चुका, उन्होंने कहा हाँ महाराज अब तो दो बैग है धर्म के मैं एक पुस्तक मैं भी पूरी जिंदगी लगा सकता हूँ और शेष को कौन पढ़ेगा, इसलिये सन्क्षिप्त करके लाओ सभी धर्माचार्य बैठे और उनकी मीटिंग हुई और धर्म का सार निकाल कर लाये एक इतनी मोटी किताब लेकर के आये सबने अपना-अपना चेप्टर उसमें लिख दिया, राजा ने कहा मैं क्षमा चाहता हूँ आप धर्माचार्य हैं, धर्म के मर्म को जानने वाले हैं, धर्म को अनुभूति में उतारने वाले हैं, धर्म का सन्क्षिप्त रूप बताये मैं आपके प्रति बड़ा अनुग्रहीत होऊँ, बड़ा कृता रहुंगा, धर्माचार्यों ने अपने सिर पर बल डालते हुये, पसीना पोछते हुये सोचा अब इससे सन्क्षिप्त रूप क्या करें फिर भी धर्माचार्य बैठे और धर्माचार्यों ने बैठ करके बड़ी योजना बनाई महिनों तक मीटिंग चलती रही और सभी धर्माचार्य चाहे सिक्ख धर्म, चाहे बौद्ध धर्म, चाहे ईसाई धर्म के, चाहे मुस्लिम धर्म के, चाहे जैन धर्म के, चाहे हिन्दू धर्म के चाहे कन्कुश धर्म के, चाहे ताऊ धर्म के, जितने भी धर्म सब धर्माचार्यों ने मिल करके पुनः एक पेपर निकाला, उस एक ही पेपर में धर्म की व्याख्याऐं लिख करके लाये सभी ने धर्म का सारांश एक एक पंक्ति में लिखा राजा ने कहा शायद मुझे कहने में शोभा नहीं देता अभी धर्माचार्यों ने धर्म के मर्म को समझा नहीं है, इतना बड़ा धर्म लिख करके लाये। अरे सभी धर्मचार्यों को तो और संक्षिप्तिकरण करना चाहिये तो और धर्म का संक्षिप्तिकरण करके लाये पुनः संक्षिप्तिकरण एक पंक्ति में लेकर आये वह सभी धर्मों का सार एक पंक्ति में आ गया आप लोग भी जानने के लिए हो रहे होंगे कि वह सभी धर्माचार्यों ने पंक्ति कौन सी कही थी जिसमें सभी धर्मों का सार आ गया वह पंक्ति थीं जिसमें लिखा था संसार में जितनी भी अच्छाई है वह धर्म है जितनी भी बुराई हैं वह सब अधर्म है। महानुभाव! कोई भी धर्म राई नहीं सिखता ''मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना'' कोई मजहब नहीं सिखाता कि आपस में तुम लडों वैर-भाव रखो, प्रत्येक धर्म यही सिखाता है कि तुम आपस में प्रेम से मिल जुल कर रहो एक दूसरे के प्रति संवेदना भाव रखो, प्रेम की भावना रखो, दया करुणा की भावना रखो, परोपकार की भावना रखो, संसार के सभी धर्म अच्छाईयों को सिखाते हैं।

महानुभाव! एक बार परम पूज्य राष्ट्रसंत गुरुदेव श्री विद्यानंद जी महाराज के पास जो आचार्य श्री आपके मेरठ में शायद दो चौमासे कर चुके पहले आये थे यहाँ पर दिल्ली में अभी भी हैं जो कि लगभग उनकी उम्र है। उनके पास विदेश के कुछ व्यक्ति आये सुना कि कोई धर्माचार्य है तो दर्शन करने के लिए पहुँचे श्रद्धा के बतौर नहीं इसलिये पहुँचे कि उन्होंने सुना कि कोई ऐसा भी धर्माचार्य है जो सभी वस्तुओं का त्याग करके दिगम्बर नग्न रहते हैं तो मन में थोड़ा कौतुक भी था नग्न क्यों रहता है क्या पागल हो गया, क्या बात है, क्या नग्नता कोई धर्म होता है, ऐसी मन में शंकायें थीं उनके पास पहुँचे, पास में पहुँचकर वह जो उतावला, कौतुकप जो था वह तो दूर हो गया, शांति से बैठे और उनकी जो चर्चा वार्ता चल रही थी सुनने लगे आचार्य श्री ने हाथ उठाकर आर्शीवाद दिया और वे जाने लगे उन्होंने भी एक लोक व्यवहार वश हाथ जोड़कर सिर झुका लिया, अंदर से श्रद्धा तो थी नहीं तो ऐसे ही हाथ जोड लिये सिर झुक लिया जब चलने लगे तो आचार्य श्री ने उन्हें कुछ पुस्तकें भेंट की, पुस्तकें भेंट करते हुये कहा ये धर्म की पुस्तकें हैं इन्हें पढ़ लेना शायद इनमें तुम्हें कुछ अच्छा दिखाई देगा तो धर्म की पुस्तक को देख कर वे आपस में चर्चा करने लगे और हँसने लगे जो साथ में दुहासिहा था उसने पूछा भाई क्या बात है तो उन्होंने कहा इनसे कहो कि हम इन पुस्तकों को स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि न हम धर्म को जानते हैं और न मानते हैं यह धर्म तो भारतीय लोगों के लिए नसीब है, बस उनके लिए धर्म रहें, धर्म को वहाँ लेकर नहीं जाना चाहते जब ये बात कहीं तब दुहासिहा ने महाराज से कहा कि महाराज ये लोग कह रहे हैं कि हम धर्म को जानते नहीं और मानते भी नहीं इसलिये इन पुस्तकों की कोई आवश्यकता नहीं महाराज भी थोडें मुस्कुरायें और कहा कि ऐसे व्यक्ति तो हमने देखे हैं कि जो धर्म के बारे में शब्दों में नही कह सकते किन्तु ऐसा व्यक्ति मुझे आज तक नहीं मिला कि जो ये कहें कि मैं धर्म को नहीं मानता ऐसा व्यक्ति खोजना बड़ा मुश्किल है जो धर्म को नहीं मानता हो, दुहासिआ ने पुनः उनसे कहा कि महाराज कह रहें है कि संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो धर्म को नहीं मानता हो अर्थात् आप भी धर्म को मानने वाले हैं उन्होंने कहा कि प्रत्यक्ष में खडे हैं हम सभी धर्म को जानते भी नहीं और मानते भी नहीं महाराज को आश्चर्य क्यों हो रहा है तो उन्होंने कहा कि महाराज का कहना है कि कोई व्यक्ति ऐसा है ही नहीं। बोले अपनी बात को सिद्ध करे जब हम सामने खडे हैं तो महाराज ने कहा एक बात बताओं कोई विद्यार्थी कॉलेज से पढ कर लौट रहा है अपने घर की ओर आ रहा था उसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा बेचारा बड़ा निर्दोष, परोपकारी अच्छा बालक है उसके बारे में पूरे शहर और गाँव के लोग तारीफ करते हैं, बड़ा भला है, सज्जन है कभी किसी को कटु शब्द नहीं बोला, मारना पीटना तो बहुत दूर की बात है कि

किसी ने उस बालक पर पीछे से लाठी का बार कर दिया, लाठी उसके सिर पर पड़ी और बालक साईकिल से धडाम से नीचे गिर पड़ा और सिर से खून बहने लगा वह मूर्च्छित हो गया, जमीन पर पड़ा हुआ है वह साइकिल पड़ी है व्यक्ति भी पड़ा हुआ है लोग बाजू में से निकल कर जा रहे हैं कोई उठाने का प्रयास नहीं कर रहा है सबको यह लगा रहा है कहीं उठा कर ले जाऊंगा मेरे मत्थे कोई केश न पड़ जाये कोई ये न कहें कि इसी ने मारा होगा तो सभी निकलते चले जा रहे हैं किन्तु एक सज्जन व्यक्ति वहाँ से निकला उसने उस बालक को उठाया उसके खून को पोछा, धोया और अपना कपड़ा फाड़ कर सिर से बाधा पुनः रिक्शा करके उसे अस्पताल में भर्ती कर दिया २-४ घंटे में उसे होश आया उसके पॉकिट में डायरी रखी थी उसमें उस एड्रेस लिखा था उसमें फोन नम्बर लिखा था उसने फोन कर दिया उसके माता पिता के लिए उसके परिवार के लोग भी आ गये जब बालक को होश आया तो उसने कहा कि मैं कहा पड़ा हूँ मैं कहाँ पर आ गया लोगों ने कहा कि तुम अस्पताल में हो ऐसे तुम वहाँ पर पड़े थे उस बालक ने उसके माता पिता ने उस व्यक्ति को बहुत साधुवाद दिया, धन्यवाद दिया धन्य हो तुमने मेरे बेटे को बचा लिया अन्यथा और पड़ा रहा २-४ घंटे तक तो शायद वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता, तो आचार्य ने उनसे पूछा कि जिस व्यक्ति ने लाठी का वार किया था, धोखे से निर्दोष व्यक्ति पर तो उसने अच्छा किया कि बुरा किया तो वह विदेशी व्यक्ति बोले बहुत बुरा किया जो व्यक्ति निर्दोष है किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं उस पर लाठी का वार करने वाला अच्छा कैसे हो सकता है, बोले वह बहुत बुरा है, बहुत बुरा किया वह व्यक्ति बहुत बुरा है, बोले अच्छा और जिस व्यक्ति ने उठा कर हांस्पिटल में एडमेट कर दिया उसका ट्रीटमेंट कराया उसके घर उसका समाचार दिया वह व्यक्ति कैसा है? वाह यह कोई पूछने की बात है वह तो अच्छा व्यक्ति हैं तुम कहते हो कि कोई और कहता है अरे सारी दुनिया कहेगी कि वह तो अच्छा व्यक्ति है, भगवान जैसा है, सारी दुनिया तो कहेगी पर तुम क्या कहोगे हम भी अच्छा कहेंगे। बस ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है महानुभाव! कोई भी धर्माचार्य हो, चाहे कोई भी साधु संत, मौलवी, फकीर, पीर पैगम्बर हो सब आपको अच्छी बात ही कहेंगे बुरी बात कोई नहीं सिखायेगा, बुरी बात यह पापी मन सीख लेता है अच्छी बात तो सौ सौ बार सिखाई जाती फिर भी व्यक्ति नहीं सीख पाता और सही मायने में स्कूल विद्यालय महाविद्यालय और पुस्तकालय किनके लिए हैं मनुष्यों के लिए हैं। देवों के लिए कोई शास्त्रालय विद्यालय पुस्तकालय नहीं है और नारकियों के लिए भी कोई शास्त्रालय विद्यालय, पुस्तकालय नहीं हैं पशुओं के लिए भी आपने देखा होगा विद्यालय, पुस्तकालय आदि नहीं बनाये उस मनुष्य के लिए सब बनाये हैं फिर भी आश्चर्य ये होता है कि मनुष्य फिर भी उनसे ज्यादा

बिगड़ता चला जा रहा है।आज देवों का दैवत्य पना ज्यों का त्यों कायम हैं, किसी भी देव ने आज तक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, आज तक नारकियों का नारकीपन राक्षसी वृत्ती ज्यों की त्यों कायम है कोई भी नारकी नरक से निकल कर ऊपर उत्पात मचाने नहीं आया, आज पशुओं की पशुता भी ज्यों की त्यों कायम है किसी भी पशु ने अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया किन्तु आज अफसोस होता है कि आज मानव या मनु की संतान कहलाने वाला ये व्यक्ति यह मानवता से दूर होता चला जा रहा है, अरे आज आश्चर्य तो ये है कि मानव को मानव कैसे बनाया जाय, आज कोई ऐसा अभियान चलाया जाये बहुत अभियान चल रहे हैं, चार व्यक्तियों का गुट बनाया अभियान चलने लगते हैं कोई पार्टी तैयार हो जाती है किन्तु किसी सज्जन व्यक्ति ने कहा है कि आज कोई ऐसा अभियान चलाया जाये जिसमें ''आदमी को आदमी बनाया जाय'' आज आवश्यकता तो आदमी को आदमी बनाने की है आदमी वह है जो देवत्व से नीचे है और पहुता से ऊंचे उठ गया है, बीच की सीढ़ी है तो आज इंसान कुछ इंसान तो ऐसे हैं जो मनुजता से नीचे गिर गये हैं और कुछ इंसान ऐसे है देवत्व के सपने देख करके आकाश में उड़ना चाह रहे हैं बिना पंखों के तो दोनों ही नीचे गिर जायेगे, जो बिना पंखों के ऊपर उड़ेंगे, देवत्व तभी प्राप्त होगा जब देव अवस्था प्राप्त हो। महानुभाव! तो कहने का आशय ये है आज वर्तमान काल में आदमी को आदमी बनाना बहुत जरूरी है। महानुभाव! उस आदमी को खुदा ही समझो जिस आदमी ने, आदमी को आदमी समझा, जो आदमी, आदमी को आदमी की तरह से काँटे-छाँटें नहीं, आदमी को कूड़े-कचरे की तरह से कहीं फेंके नहीं, आदमी का कहीं तिरस्कार नहीं किया जाये, आदमी को आदमी समझ लें, आदमी में जब परमात्मा का रूप समझ ले निसंदेह समझो वह आदमी, आदमी नहीं खुदा है। भगवान है, तो आदमी में, इंसान में एक भगवान को भी देख सकता है। महानुभाव! वर्तमान बहुत दूषित होता जा रहा है, क्यों? प्रदूषण बहुत फैल रहा है लोगों को चिन्ता हो रही है कौन से प्रदूषण की कहता है जल प्रदूषित हो गया है, शुद्ध जल चाहिये, कोई कहता है वायु प्रदूषित हो रही है वायु शुद्ध चाहिये कोई कहता है ध्वनि प्रदूषण बढ़ता चला जा रहा है शांति चाहिये, कोई कहता है वातावरण बहुत प्रदूषित होता जा रहा है उसके लिए, शांति चाहिये, कोई कहता है भूमि प्रदूषित हो गई है उसका शुद्धि करण चाहिये और कोई कहता है वायु मंडल में प्रदूषण बहुत फैल गया है उसकी शुद्धि चाहिये किन्तु इन सब प्रदूषणों से खतरनाक है विचारों का प्रदूषण वैचारिक प्रदूषण सबसे ज्यादा खतरनाक है घातक है यदि विचारों में से प्रदूषण निकल जाय तो निःसंदेह मानिये आज भी पुनः राम राज्य की स्थापना हो सकती है, आज भी विश्व आत्म शांति और विश्व शांति के गीत गा सकता है और परम शांति को पा

सकता है। महानुभाव! महापुरुषों का जीवन हमारे लिए एक आदर्श जीवन होता है महापुरुषों ने जीवन केवल अपने लिए नहीं जिया, महापुरुष का जीवन कभी अपने लिए नहीं होता। जैसे संत का जीवन कभी अपने लिए व्यक्तिगत नहीं होता संत का जीवन समूह के लिए होता है जैसे सड़क एक व्यक्ति के लिए नहीं होती प्राणी मात्र के लिए होती है, सरिता किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं होती प्राणी मात्र का कल्याण करने वाली होती है। सागर किसी एक व्यक्ति का नहीं होता समुद्र तो प्राणी मात्र के लिए होता है। महानुभाव! शास्ता प्रभु परमात्मा किसी एक व्यक्ति का नहीं होता सबके लिए होता है शासक राजा भी किसी एक व्यक्ति का नहीं होता उसका जीवन अपने लिए पर्सनल नहीं होता राजा का जीवन जनता जनार्दन के लिए होता है यदि सही मायने में सच्चा राजा है तो इसी प्रकार शास्त्र भी किसी एक प्राणी के लिए नहीं होते एक व्यक्ति के लिए नहीं होते प्राणी मात्र के लिए होते हैं, इसी प्रकार संतों का जीवन भी किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं होता है समुची मानव जाति के लिए होता है जो व्यक्ति कहें संत ये मेरा है तो ये समझियें कि वह आकश को मुट्ठी में बंद करना चाहता है संत किसी एक का नहीं होता कोई कहें ये जैन संत है वह जैन संत होते ही नहीं वह जन जन के संत हैं, जन जन के संत होते हैं जो किसी जाति, गोत्र से बंध जाता है वह संकीर्णता के बंधन में बंधा हुआ कहलाता है कभी स्वयं मुक्त नहीं हो सकता प्राणी मात्र को मुक्त नहीं कर सकता इसलिये महानुभाव चाहे संत हो, सरिता हो, चाहे शास्त्र हो, चाहे सागर हो, चाहे सड़क हों, ये सभी के लिए होते हें इस पर एक व्यक्ति का कभी अधिकर नहीं होता। महानुभाव! संत पुरुष महापुरुष, ऋषि और मुनि प्रत्येक प्राणी के कल्याण की भावना भाते हैं किन्तु उनकी भावना भाने से ही काम नहीं चलेगा आप सभी को भी प्रयास और पुरुषार्थ करना चाहिये कि हम भी सुख और शांति को प्राप्त करें, सुख शांति की प्राप्ति तब होगी जब तुम दूसरों को सुख शांति देने में निमित्त बनोगे दूसरों का गला उतार कर शांति से बैठना चाहो न बैठ पाओगे, तुम दूसरों को नमक खिलाकर के सोचो कि मेरे मुख में कोई मिश्री का टुकड़ा डाले न डालेगा, तुम्हारे मुँह में फिर वह जहर भरेगा तुम यदि किसी पर चाकू का वार करोगे, तुम्हारें ऊपर तलवार का वार करेगा, तुम बन्दूक चालाओगे वह तोप चलायेगा और तुम किसी को गले लगाओगे तो वह भी सामने से आकर के गले लगायेगा।

महानुभाव! ईर्ष्या के बदले ईर्ष्या घृणा के बदले घृणा, प्रेम के बदले प्रेम, वात्सल्य के बदले वात्सल्य वहीं मिलता है जो हम देते हैं संसार में वही व्यवहार प्राप्त होता है जैसा व्यवहार हम दूसरे के प्रति करते हैं कुएँ की आवाज की तरह से, कुएँ के पास जाकर के यदि तुम बोलो ओम, तो आवाज लोट कर आयेगी

ओम, तुम बोलो मैं तुझे मार दूँगा तो आवाज लौटके आयेगी मैं तुझे मार दूँगा, तुम बोलोगे मैं तेरी रक्षा करुँगा तो आवाज आयेगी में तेरी रक्षा करूँगा अपनी आत्मा की आवाज है जैसी आवाज तुम निकालो वही आवाज तुम्हें सुनाई देगी, यदि तुम कहोगे मैं पूरी दुनियाँ को मार कर राज करूँगा, तुम कहोगे मैं तुम्हें जीवित नहीं छोडूँगा तो सुनाई देगा मैं तुम्हें जीवित नहीं छोडूँगा, तुम कहोगे चिन्ता नहीं करना मैं तेरे साथ हूँ तेरी रक्षा करूँगा, तेरी सहायता करूँगा, आवाज लोट कर आयेगी चिन्ता नहीं करना मैं तेरी साथ हूँ मैं तेरी रक्षा करूँगा, सहायता करूँगा। महानुभाव! तो कहने का आशय यह है धर्म का प्रादुर्भाव धर्म का उद्गम स्थल तुम्हारा मन है, इस मन की पवित्रता के साथ धर्म का प्रादुर्भाव होता है यदि मन अपवित्र है तो यहाँ पर धर्म की गंगोत्री प्रारम्भ नहीं हो सकती, इस मन को हरिद्वार बनाना हरि की पौड़ी बनाना है, यदि मन पवित्र घर मैं ही तीर्थ का वास हो गया यदि मन पवित्र हो गया कि मन मैं परमात्मा का वास हो गया और मन पवित्र नहीं हुआ कितने तीर्थों पर चक्कर लगाओ, मंदिरों के घंटे बजाओ, मंदिरो पर जाकर अपना माथा रगड़ो, चाहे परमात्मा की मूर्तियों के चरणों को घिस घिस करके चाहे खंडित क्यों न कर दो जब तक मन की कषाय न घिसेगी, मन का मैल नहीं उतरेगा तब तक धर्म का स्वाद नहीं आ सकेगा। जैसे कोई व्यक्ति नारियल को लेकर खाना चाहे उसमें जो गरी गोला अंदर है उसका स्वाद तो नहीं आ सकेगा, पहले नारियल के छिलके को उतारना पडेगा, जटा निकालना पडेगा तब अंदर से पानी निकलेगा और कोई चाहे मैं जटा को न निकालूँ, ऊपर की खोपड़ी को भी नहीं तोडू, पानी ऐसे ही पी लूँ तो कैसे पिऊँगा, गरी को ऐसे ही खा लूं कैसे खा लेगा, नहीं खा पायेगा। इसी प्रकार जब तक हम अपने अंदर में मन के ऊपर विद्यमान विकार की कषायों की पर्तों को दूर नहीं करेंगे तब तक अंतरंग से धर्म नहीं हो सकेगा, धार्मिक बनना बहुत सरल है, धर्मात्मा बनना बहुत कठिन है आप कहेगे कि धार्मिक और धर्मात्मा में कोई फर्क है क्या? फर्क है धार्मिक वह कहलाता है जो शरीर से धर्म की क्रिया करता है, वचन से धर्म के शब्द बोलता है और उसे दुनिया भर के लोग कहते हैं बड़ा धर्मात्मा है वह धार्मिक है और वह ऐसा धार्मिक होता हैं मंदिर में जाकर के साष्टांग लेट जाता है, और झोली फेला करके कहता है प्रभु परमात्मा जो कुछ है सो तू है अपना जीवन तेरे चरणों में अर्पित करता हूँ। मैं कोई पाप नहीं करूँगा, मंदिर में पाप नहीं करूँगा नहीं तो मुझे पाप लगेगा और दुकान पर आकर के बस फिर तो मोतरी कटारी से काटता है उसका धर्म ऐसा होता है मंदिर का धर्म अलग और दुकान का धर्म अलग होता है मंदिर में एक शब्द झूठ नहीं बोलूँगा पाप लग जायेगा दुकान पर आकर के कम से कम १०० झूठ बोलेगा कहेगा तेरी सौगंध खाता हूँ, १०० रुपये का थान तो

तुझे घर में पड़ा है मैं ८० रु. में देता हूँ। बताओ ऐसा कौन सा मूर्ख होगा जो १०० रुपये थान पड़ा है ८० रुपये में देगा और सौगंध खाकर के वह सोचता है यहाँ पाप करने वाली आत्मा है, आत्मा चाहे मंदिर में रहे, चाहे मस्जिद में रहे, चाहे गुरुद्वारा में रहे, चाहे मकान में रहे, चाहे फैक्टरी में रहे जो आत्मा पाप करने वाली है वहीं आत्मा पाप को भोगने वाली है आत्मा अलग अलग नहीं है जो धर्मात्मा होता है वह कभी भी पाप नहीं करता वह कहता है भैया धर्म जिसकी आत्मा में पहुँच गया वह न मंदिर मैं पाप करेगा और न घर में पाप करेगा जो धार्मिक होगा जो धर्म का चोला पहन लेता है। वह कहेगा मंदिर में दीपक नहीं जलाना हिंसा हो जायेगी और दुकान पर बैठ कर १०० झूठ भी बोल देना तो पाप नहीं लगेगा, दुकान पर बैठ करगंदा संदा भी खा लेगा तो पाप नहीं लगेगा, मंदिर में दीपक नहीं जलाना, आरती नहीं करना पाप लग जायेगा। क्योंकि उसका धर्म अलग अलग है मंदिर का अलग है घर का अलग है किन्तु ऐसा धर्म शास्त्रों में नहीं लिखा है, धर्म तो आत्मा का स्वभाव होता है, वह आत्मा को छोड़ कर कहीं नहीं जाता यदि आप धर्मात्मा बनना चाहते है तो आप उस धर्म को आत्मा की भूमी पर पैदा करें तो आप धर्मात्मा बन जायेंगे। जैसे किसी चाहन को हटाने से जल का स्रोत फूट सकता है वह जल आपको सुख शांति दे सकता है खूब पियो आपको जीवन भर काम देगा किन्तु ऊपर से चार बूंद जल छिड़कने से जल का स्रोत प्राप्त नहीं होता।

महानुभाव! राम चंदरिया औढ़ने से राम नहीं बनता, राम नजरिया होना चाहिये राम का जीवन आदर्श जीवन रहा और इतना आदर्श रहा इतिहास ये शास्त्रों में उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ, बड़े सम्मान के साथ बड़ी भक्ति के साथ, बड़ी विनय के साथ, बडे समर्पण के साथ लिया जाता है यदि कोई राम का नाम लेकर अपमान कर दे, शायद राम का भक्त सहन नहीं कर सकता उसका खून खोल जायेगा। जैसे वर्तमान काल में कोई राष्ट्रपति का अपमान करदे तो उसे तुरन्त एरेस्ट कर लिया जायेगा ऐसे ही कोई किसी भगवान का अपमान करें तो लोग बडे गरम हो जायेंगे, तो राम का जीवन इतना अच्छा रहा उनका नाम भी सम्मान के साथ लिया जाता है और नाम ही नहीं उनकी मूर्ति बना कर रख दी जाये तो लोग श्रद्धा से सिर झुकाते हैं, वे मर्यादा पुरुषोत्तम रहे, उन्होंने कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया चाहे भले ही वनवास तो स्वीकार किया महलों को छोड़ा किन्तु मर्यादा को कभी नहीं तोड़ा।

महानुभाव! इसलिये इतिहास में मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुये तो श्री राम चंद्र ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुये यदि कोई और होता तो लक्ष्मण को भी उत्तेजना आ गई जब कैकई ने वरदान माँग लिया भरत को राजगद्दी राम को चौदह वर्ष का वनवास लक्ष्मण कहने लगे पिता जी ने तो कल

घोषण करी कि तुम्हें राज्य मिलेगा, आज पिता जी ऐसा कैसे कहते हैं, युद्ध करेंगे हम, युद्ध करके पिता जी से राज्य को छीन लेंगे रामचंद्र ने कहा लक्ष्मण तुम होश मैं भी हो, क्या कह रहें हो तुम्हारें मुँह से ऐसे शब्द कैसे निकले, जिस पिता ने जन्म दिया, पाल पोस कर बड़ा किया उससे युद्ध करोगे सत्ता के लिये क्या यही नीति कहती है, क्या तुम्हारा माता पिता के प्रति यही करूँ राज्य तुम्हें मिलना चाहिये, भरत को राज्य क्यों मिला राम ने कहा नहीं, राज्य के अधिकारी भरत ही हैं, हमें बड़ा पुण्य का अवसर प्रदान हुआ हम ऋषि मुनियों के दर्शन करेंगे। जिस व्यक्ति की सोच सकारात्मक होती है ऐसा व्यक्ति संकटों के बीच भी खुश रहता है। जैसे कांटों के बीच गुलाब खिलता रहता है और जिस व्यक्ति की सोच नकारात्मक होती है ऐसा व्यक्ति सुखों के बीच में भी दुखों को सहन करता रहता है दुखी बना रहता है।

महानुभाव! राम की सोच ही अलग थी, राम ने व्यक्तिगत धर्म का पालन नहीं किया एक महाधर्म का पालन किया शायद आपको ज्ञात होगा आपने रामायण पढ़ी होगी तो ''जब अनंग-लवण और मदनांकुश ने राम से पूछ लिया, क्या आप वही राम हैं आपके बारे में सुना जाता है कि आपके कोई सीता नाम की रानी थी, उन्हें यह मालूम नहीं था कि सीता हमारी माँ का नाम हैं, वन देवी के नाम से जानते थे, आपने सीता रानी को जंगल में छुडवा दिया, किसी के कहने से किसी ने मिथ्या भ्रम लगा दिया आपने छुड़वा दिया न्याय नहीं किया, तो राम ने कहा शायद हो सकता है आपको न्याय करना चाहिये आप तो राजा थे ठीक हैं, राजा का एक राजधर्म भी होता है परिवार धर्म अलग है, राजधर्म अलग है।

महानुभाव! इस प्रकार नीतियों का पालन करने वाले विश्व को मर्यादा मैं जीना सिखाने वाले भगवान राम का जीवन एक आदर्श जीवन रहा, बचपन से लेकर जीवन के अंत तक देखिये लगता है पग पग पर उन्होंने मर्यादा से जीना सिखाया है इसलिये महानुभाव! आज उनका नाम लेते ही मस्तक झुक जाता है राम का नाम लेते ही दोनों हाथ जुड जाते हैं जिस व्यक्ति ने मर्यादा मैं जीना सिखाया जो मर्यादा मैं स्वयं जिया संसार ने उसके कदमों को चूमा है उसके पद जहाँ पड़े उस पद धूली को भी माथे से लगाया है।

महानुभाव! परमात्मा का वास आत्मा में होता है हृदय में होता है किन्तु कौन से हृदय में सभी के हृदय में हो जायेगा नहीं ऐसे नहीं होगा। आपने देखा होगा संसार के अधिकांश देवी और देवता कमल के पुष्प पर बैठे दिखाई देते हैं, वे गुलाब के फूल पर बैठे क्यों नहीं दिखाई दिये गेंदा, चंपा, चमेली के फूल पर बैठे क्यों नहीं दिखाई दिये, पाषाण की शिाला पर बैठे क्यों नहीं दिखाई दिये, कमल के फूल पर क्यों बैठे हैं, मंदिर में भी बिठालेंगे तो कमलफूल पर इसका

आशय ये है परमात्मा का वास वहीं होता है जिसका हृदय कमल की तरह कोमल होता है, जिसके हृदय में क्रूरता नहीं होती, निर्मलता होती है जिसके हृदय में पवित्र परिणाम होता है कमल जैसी कोमलता ऋजुता आ जाती है उसके हृदय में परमात्मा का वास हो जाता है। महानुभाव! आप भी अपने हृदय को पवित्र बनाये कोमल बनाये और हृदय की पवित्रता तभी है जब खान पान शुद्ध हो, एक बात ध्यान रखना जब तक व्यक्ति का खान-पान शुद्ध रहता है तब तक व्यक्ति का खान-पान शुद्ध रहता है। क्या? खान दान किसे कहते हैं, खान-पान कहते हैं। वंश कुटुम्ब परिवार जब तक खान-पान शुद्ध है, तब तक खान-पान शुद्ध है जब खान-पान बिगड़ जायेगा तो हॉलात भी बिगड़ जायेगा जब तक घर की रोटी शुद्ध रहती है, तो बेटा-बेटी शुद्ध रहते हैं, जब रोटी बिगड़ गई तो बेटा-बेटी बिगड़ते चले जाते हैं। महानुभाव! पहले रसोई को रसोई कहते थे जहाँ रस था अन्यपूर्णा देवी का मंदिर माना जाता था व्यक्ति शुद्ध वस्त्र पहन करके भोजन करता था, किन्तु अब रसोई को किंचिन कहने लगे जहाँ पर किच-किच मची रहती है शांति रहती है, नहीं पत्नी भी वहीं जाकर शिकायत करेगी किंचिन में जब आज-कल व्यक्ति भोजन करने बैठते हैं तो पालथी लगा कर नहीं बैठते, कुर्सी पर बैठेंगे, जूते पहने भी भोजन कर रहे हैं तो पवित्रता नहीं रही, जैसे भगवान के मंदिर में जूता चप्पल पहन कर नहीं जा सकते वैसे ही अन्नपूर्ण देवी के मंदिर में जूते चप्पल पहन कर नहीं जाना चाहिये। महानुभाव! वहाँ की पवित्रता तुम्हारे चित्त को पवित्र करने वाली होती है और धर्म स्नेही बन्धुओं जिसका हृदय बीड़ी सिगरेट पीने से काला हो गया हो क्या उस काले हृदय में आकर भगवान विराजमान हो जायेंगे, जिसका हृदय अण्डे-माँस खाकर के अपवित्र हो गया हो गंदा हो गया हो क्या उसके हृदय में आकर के परमात्मा बैठ जायेंगे? आप परमात्मा की प्रतिष्ठा करते हैं वेदी की प्रतिष्ठा करते हैं, मंदिर की प्रतिष्ठा करते हैं, शुद्धि करते है बिना शुद्धि किये भगवान को विराजमान नहीं करते तो हृदय को शुद्ध क्यों नहीं कर लेते, हृदय में जब भी परमात्मा विराजमान होगा उसकी शुद्धि करना परम आवश्यक है। महानुभाव! तो इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति अपने जीवन में संकल्प करें कि जीवन में कभी शराब, माँस, अण्डा, का सेवन नहीं करूँगा, मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जीवन में कभी इन वस्तुओं छूआ भी नहीं भगवान महावीर स्वामी के अंशज और वंशज यहाँ बैठे हुये हैं, भगवान महावीर स्वामी ने भी इन अपवित्र वस्तुओं को कभी छूआ भी नहीं। महानुभाव! जब महापुरुषों ने वस्तुओं को नहीं छूआ तो आप उनके अनुयायी होकर के कैसे सेवन करते हैं, यदि सेवन कर रहे हैं तो सच मानिये आप उनके अनुयायी नहीं विरोधी हैं, जो अनुयायी होता है वह अपने इष्ट प्रभु आराध्य का अनुगमन करता

है जैसा उन्होंने किया वैसा करता है यदि आप उनसे हट करके चल रहे है तो विरोधी है। आप प्रातः काल जगते ही हाथ जोड़ कर कहतें हैं जय जिनेन्द्र और प्रातः काल कहते हैं राम राम जी, आप कहते हैं हाथ जोड़कर राधेश्याम, कुछ भी कहते हैं इतना कहना पर्याप्त नहीं है यदि आपका आचरण वास्तव में राम जैसा है तो आपका हाथ जोड़ कर राम कहना सफल और सार्थक है यदि आपका आचरण रावण जैसा है तो आपको राम राम कहने की आवश्यकता नहीं है कल से रावण रावण कहना प्रारम्भ कर दो यदि रावण रावण नहीं कह सकते हो तो रावण जैसे आचरण को छोड़कर के राम जैसा आचरण प्रारम्भ कर दो कौन सी बात स्वीकार है तो कल से, कल से ही नहीं आज से अपने भगवान राम ने जिन वस्तुओं का सेवन नहीं किया अण्डा, माँस, शराब आदि का राम के अनुयायी और भक्तों को भी उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये, सपने में भी अण्डा, माँस, शराब का सेवन नहीं करना चाहिये ऐसे यहाँ सभा में बैठे कितने राम भक्त हैं जो कि आज संकल्प कर सके जीवन में कभी इन गंदी वस्तुओं का सेवन नहीं करेंगे दोनों हाथ खड़े करके बता तो दें, जीवन में कभी अण्डा नहीं, खायेंगे भले प्राण दे देंगे, माँस की बोटी नहीं खायेंगे घास की रोटी खा लेगें माँस की बोटी नहीं खायेंगे और शराब नहीं पियेंगे चाहे भले कुएँ का पानी न मिलेगा तालाब का पानी पी लेंगे, बहुत सुंदर मुझे बड़ी प्रसन्नता है आपने मेरी बात को बड़े ध्यान से सुना और मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है आज भी आप सबके पवित्र हृदय में कहीं न कहीं प्रभु परमात्मा के प्रति आस्था श्रद्धा भक्ति समर्पण की भावना जीवंत है निसंदेह इसी भावना से आपके जीवन में परमात्मा पना जीवंतता को प्राप्त करेगा, आप सभी का कल्याण हो,आप सभी का मंगल हो, आप सभी का शुभ हो, आप सभी व्यापारी वर्ग ने मिल करके किसी संत के प्रवचन का आयोजन यहाँ रखा, किसी संत की वाणी को सुनने का भाव आप सभी ने बनाया और मेरी वाणी को सुन करके आपको जो कुछ अच्छा लगे उसे स्वीकार कर लेना, जो कोई बात मेरे मुख से कटु निकल गई हो तो आपके हृदय में कहीं चुभ गई हो तो मैं अपने शब्दों को वापिस ले लेता हूँ, अच्छी अच्छी बातें आपकी बुरी बुरी बातें हमारी उन्हें मैं वापिस ले जाऊँगा। तो महानुभाव कोई भी अच्छाई आप ग्रहण कर लेना एक अच्छाई भी आपको परमात्मा तक पहुँचा सकती है, कोई भी एक पगडंडी पकड़ लेना, उस सही पगडंडी पर चले जाना मंजिल की प्राप्ति हो जायेगी। रास्तों को बदलने की आवश्यकता नहीं है। तो महानुभाव! मैं सभी व्यापारी समूह को व्यापारी वर्ग की यहाँ जो संस्था है जिन्होंने आयोजन किया उन सभी को और जो इस क्षेत्र में प्रांगण में रहने वाले सभी महानुभाव है सभी अहिंसा धर्म में निष्ठा के साथ जीने वाले हैं, अच्छाईयों को स्वीकार करने वाले सभी धर्मात्मा हैं, उन सभी धर्मात्मा को

मैं अंतरंग आत्मा से प्रेम और वात्सल्य पूर्वक बहुत बहुत आशीर्वाद देता हूँ, आपके जीवन में सुख और शांति की प्राप्ति हो आपके जीवन में समृद्धि बढ़े, यश कीर्ति बढ़े, आपके जीवन में वैभव भी बढ़े और इसके साथ साथ आपके जीवन में धर्म की भावनायें बडे आपने अहिंसा का संदेश सुना आपने जो शाकाहार आदि का नियम लिया, आपने अण्डा, माँस, शाराब का त्याग किया मैं आपसे बहुत अनुग्रहित और मुझे उम्मीद ये है कि आप अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी इस कार्य के लिये प्रेरणा दे सकते हें, वह त्याग करें या नहीं करे आप कह सकते हैं भैया ऐसा त्याग करो तो ज्यादा अच्छा है। महानुभाव! आप लोग भी उस धर्म के अंश को ग्रहण कर सकेंगे, आप लोग भी प्रभु परमात्मा की आज्ञा का प्रसार प्रचार कर सकेंगे। आप सभी का कल्याण हो, शुभ हो, मंगल हो, मेरी ऐसी आपके प्रति पवित्र भावना है इन्हीं भावनाओं के साथ मैं प्राणी मात्र को, कोई ये सोचे कि कोई जैन संत आये थे, जैन संत कहना, जैन संतों का अपमान है, हम ये कहें वह जैन संत नहीं जन जन के संत थे और जन जन के कल्याण की भावना लेकर के आये थे इसी में सभी संतों का सम्मान है इसीके साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

जय बोलिये श्री शांति नाथ भगवान की
जय बोलिये श्री राम चंद्र भगवान की
जय बोलिये श्री विश्वधर्म की

दृष्टि बदलने से ही सृष्टि बदल जाती है

धर्मस्नेही महानुभावों!

शाश्वत अनादिनिधान प्राणी मात्र के कल्याण में सक्षम और समर्थ जिनशासन अबाधित रूप से गतिशील हैं। ये धर्मचक्र प्राणीमात्र के कल्याण के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। आज संसार के जो व्यक्ति जिस विभूति को प्राप्त कर रहे हैं वह जिन शासन की ही महती कृपा और अनुकम्पा है। अनादि काल से लेकर आज तक और आज से अनंत काल तक जो कोई भी जीव मुक्ति को प्राप्त करेगा जिन शासन के माध्यम से प्राप्त करेगा।

दिगम्बर अवस्था को स्वीकार किये बिना इस संसार से किसी को भी मोक्ष नहीं हो सकता। दिगम्बर अवस्था को बुद्धिपूर्वक भाव सहित स्वीकार किये बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं। नग्न तो पशुपक्षी भी रहते है नग्नता की बात नहीं, यह नग्नता तो उनकी मजबूरी है।

नग्नता तो स्वात्मभूत होने पर, आत्मबोध होने पर, धर्म का परिज्ञान होने पर, स्वयं के स्वभाव की नियती की प्रवृत्ति की जानकारी होने पर जो बाह्य परिग्रहों का त्याग किया है वही साधना है अपनी आत्मा की विभूति को प्राप्त करने के लिये।

एक गरीब व्यक्ति जिसके पास कुछ नहीं है फिर भी बहुत बड़ा परिग्रही हो सकता है और एक व्यक्ति जिसके पास बहुत कुछ था, उसने त्याग कर दिया वह निस्परिग्रह हो गया।

महानुभाव! एक व्यक्ति किसी एक आम्नाय सम्प्रदाय का कल्याण करने वाला नहीं, इस जिन शासन को जिसने भी स्वीकार किया है वह जिन बन गया है। जैसे राम वन गये तो बन गये। यदि राम वन नहीं जाते तो वे भगवान नहीं बन पाते।

इस भरत क्षेत्र में वृषभ आदि चतुर्विंशति तीर्थंकरों के उपरांत तीन अनुबद्ध केवली हुये, पाँच श्रुतकेवली हुये, ग्यारह अंगधारी आचार्य हुये। अंगधारी आचार्य हुये कई आचार्य हुये उन आचार्यों ने जिनशासन की महती प्रभावना की, उन्हीं का उपकार कहा जाये कि आज हम जिन शासन को समझ रहे हें, जिन शासन में जी रहे हैं क्योंकि तीर्थंकरों आदि के मोक्ष जाने के बाद यदि वे परम्परा से होने वाले आचार्य शास्त्रों को लिपिबद्ध नहीं करते, वे साधना करके संस्कार नहीं देते तो बताओ आज हमारे पास क्या रहता। जो परम्परा मुनियों की चली आ रही है, जो परम्परा श्रावकों की चली आ रही है। जैसे आप अपने पुत्र को सम्पत्ती देते हैं वैसे ही संस्कार गुरु ने अपने शिष्य को दिये, शिष्य ने अपने शिष्य को दिये इस प्रकार अनश्युत रूप से संस्कार चले आ रहे हैं। वैदिक परम्परा में एक बात आती

है-

''अपुत्रस्य गति नास्ति''

जिसके कोई पुत्र नहीं हुआ है, उसकी कोई गति नहीं होती, मोक्ष नहीं होता, इसका आशय क्या है? इसका आशय ऐसा नहीं है जो उन्होंने लगा लिया है कि कोई बाल ब्रह्मचारी नहीं होगा तो मोक्ष नहीं होगा। इसका आशय ये है कि जिसने अपनी विद्या को दूसरे के हित में प्रयोग नहीं किया अपने ज्ञान को अपने साथ ले गया, समाधि करके, किसी को शिष्य नहीं बनाया ज्ञान का उपदेश नहीं दिया, कल्याण का उपदेश नहीं दिया, अपने संस्कार नहीं दिये वाणी से नहीं मूक उपदेश भी दिया जाता है, अपनी चर्या से उपदेश दिया जाता है, चाहे कोई उपदेश सुनने वाला नहीं हो, तब भी दिया जाता है आप कहेंगे कैसे एक मुनि महाराज जंगल में बैठे हैं साधना कर रहे हैं उपदेश सुनने के लिये कोई श्रावक नहीं पहुँचा फिर भी उनकी विशुद्ध वर्गणा से वहाँ के जानवर अपने वैर भाव को भूल गये, वहाँ के वृक्ष सूखे थे हरे हो गये। सूखे तालाबों में पानी आ गया, उनकी विशुद्ध वर्गणाओं का प्रभाव देखो उनकी वर्गणाओं के माध्यम से उनकी कषायों भी मंद हो गयीं।

तो महानुभाव! आचार्यगण अपने संस्कार देते गये आचार्यों ने ग्रंथ लिखे अपने शिष्यों को दिये, मौखिक उपदेश दिया, उसका परिणाम ये हुआ कि आज हमारे पास शास्त्र हैं, जिन शास्त्रों की छः महिने तक होली जली, मंदिरों को तोड़ा गया, मूर्तियों को तोड़ा गया, जैन श्रावको को जिंदा चिन दिया गया, मुनि महाराजों पर उपसर्ग हुये, किन्तु इसके उपरान्त भी आज हमारे पास जिन संस्कृति है, आचार्यों की कृपा, भट्टारकों का उपकार, उदारमन श्रावको ने धन का सदुपयोग किया, उनकी महती कृपा और जो जिनवाणी आचार्यों ने जंगल में रह कर ताड़ के पत्तों पर कांटों से उकेर उकेर कर लिखी, उन आचार्यों का हमारे ऊपर महान उपकार है। महानुभाव ऐसे आचार्य एक नहीं कई आचार्य हुये, आचार्य माघनंदी, आचार्य धरसेन, आचार्य गुणधर, आचार्य पुष्पदंत, भूतबलि आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी, आचार्य यतिवृषभ स्वामी, आचार्य नागहस्ति, आचार्य आर्यमंशु, आचार्य काणभिक्षु, आचार्य पूज्यपाद स्वामी, आचार्य उमास्वामी, आचार्य रविषेण, आचार्य स्वामी आचार्य अकलंक स्वामी आचार्य वीरसेन, आचार्य जिनसेन, आचार्यों ने अपने समय का सदुपयोग अपने आत्मा के कल्याण में ही नहीं किया बल्कि पर के कल्याण में भी किया। उन्हीं आचार्यों की एक निर्मल स्वच्छ अक्षुण्ण परम्परा के आचार्य की बात इन्हीं आचार्यों की दिव्य परम्परा में एक इस स्वच्छ धवल आकाश में विद्यमान नक्षत्र और तारों के बीच सूर्य की तरह उदीयमान एक आचार्य हुये, समन्तभद्र स्वामी। उरवपुर जिले के फडिमण्डल नाम बाल्यावस्था से मुनिदीक्षा को स्वीकार कर लिया। मुनि दीक्षा को स्वीकार करके गहन तपस्या की। गहन अध्ययन

किया न केवल निष्ठा को संघर्ष की कसौटी पर कसा अपितु ज्ञानोपसना भी की न केवल ज्ञानोपसना, संयम और तप को भी चरम सीमा तक पहुँचा दिया, किन्तु कर्म किसी को नहीं छोडते, वह सबके साथ निष्पक्ष शुद्ध नैयायिक कर्म का फल भोगना पडता है। चाहे तो तपस्या करके काट दो, चाहे पुण्य करके काट दो,चाहे उस कष्ट को भोगने के लिये तैयार हो जाओ क्योंकि कर्म तीर्थंकर जैसे महापुरुष को भी नहीं छोड़ा, कर्म ने चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव, और वलभद्र जैसे महापुरुषों को नहीं छोडा़ कर्म तो कोई भी हो, जिसने बांधा है उसको उसका फल भोगना ही पड़ेगा। आचार्य समन्तभद्र स्वामी बाल्यावस्था में दीक्षित हो कर साधना के शिखर पर पहुँच रहे हैं, धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना कर रहे हैं, किन्तु कर्म के उदय से उन्हें भस्म व्याधि रोग हो गया भस्म व्याधि रोग का आशय होता है, जितना भी खाओ सब भस्म हो गया, किन्तु साधु की अवस्था में तो भोजन एक बार ही किया जा सकता है उसमें भी जो अंजुलि में आया वही करना है। अब भस्म व्याधि रोग में घंटे भर में वे जो आहार करके आये सब भस्म हो गया, तीव्र भूख। क्षुधा की वेदना उन्हें आकुल व्याकुल करने लगी, क्या करें, बहुत सहन किया।

फिर गुरु महाराज ने पूछा? तुम्हारा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है क्या? तुम इतने दुर्बल और उदास चित्त क्यों दिखाई दे रहे हो? उन्होंने कहा गुरुदेव! अब ज्यादा कुछ कहने का कोई वक्त नहीं है, और इतना भी नहीं चाहता, बस संक्षेप में ये समझ लो कि मैं रोग से पीड़ित हूँ, उस रोग का मुझे कोई उपचार दिख नहीं रहा है, इसलिये आपके चरणों में समाधि लेना चाहता हूँ।

उनके गुरु महाराज ने अपने शिष्य के मुख से सुन व मेरा शिष्य इतना दुखित हो गया समाधि की याचना करता है, तो उन्होंने कहा नहीं बेटे क्या बात है? समन्तभद्र स्वामी जी ने कहा महाराज! मुझे भस्मव्याधि रोग है, मैं जितना, आहार करता हूँ, सब स्वाहा हो जाता है, घंटे भर में सब पच जाता है, २३ घंटे कैसे व्यतीत करता हूँ बस मुझे पता है। गुरु महाराज कहते हैं समाधि नहीं देंगे, हम जानते हैं तुम्हारें माध्यम से धर्म की बहुत बड़ी प्रभावना होनी है, इसलिये हम आपको आदेश देते हैं कि तुम इस भेष को छोडकर नीचे भेष में आ जाओ, अपने रोग का उपचार करो, उसके बाद पुनः दीक्षा देके, प्रायश्चित देंगे और तुम अपनी आत्मा का कल्याण करना, जिनशासन की प्रभावना करना।

समंतभद्र स्वामी जी के नेत्रों से आँसू बहने लगे, यह मुनि दीक्षा ऐसे नहीं मिलती, इसे नहीं छोड़ा जा सकता, मैं अपना शरीर छोड सकता हूँ, मैं मुनि दीक्षा नहीं छोड सकता। किन्तु दूसरा उपाय भी नहीं गुरु का आदेश है। गुरु बहुत आगे की बात जानते हैं उनकी दूरदृष्टि होती है, शिष्य की दृष्टि लघु दृष्टि होती है,

सही पूछा जाये तो, शिष्य पास की दृष्टि से भी पूरा सही नहीं देख पाता। गुरु ने कहा है ऐसा करना है, अतः बडे दुखी मन से उन्होंने संयम को त्याग कर, वस्त्रों को स्वीकार कर लिया। चारित्र का त्याग किया, सम्यक्त्व का नहीं और पुनः नाना स्थानों पर वे कहीं शिवमतानुयायी साधक बने, परिव्राजक बने, कहीं बौद्ध मतानुयायी बने क्योंकि रोग को दूर करने के लिये विभिन्न प्रकार के भेष धारण कर मंदिर में रहने लगे, हो सकता है उन्होंने सोचा हो कि अपने धर्म में रहकर धर्म की निंदा व अप्रभावना बहुत हो सकती है, किन्तु वहाँ जाने पर मुझे कोई पहचानता नहीं है, मैं कौन हूँ, वास्तव में एक जैन साधु था और गुप्त रूप से अपने रोग को दूर करूँगा जिससे धर्म की अप्रभावना व निंदा न हो। कर्म का उदय भोगने के लिये मैं तैयार हूँ, और अपने गुरु का आदेश भी मुझे स्वीकृत है।

भटकते भटकते बनारस में पहुचे। वहाँ का राजा शिवकोटि था, कहा जाता है उसने शिव जी के एक करोड मंदिर बनवाये थे। और वहाँ शिवपिंडी के पास जो भोग चढ़ता था, वह कहते हैं कि सवामन भोग, अनेक मिठाईयां चढ़ाई जाती थीं। तो वे वहाँ पहुँचे, उन्होंने सोचा यहाँ ठीक है गरिष्ट भोजन है, और इससे मेरा पेट भर जायेगा, क्षुधा शांत हो जायेगी। किन्तु क्या करूँ? कैसे ये मुझे मिले? और वे मंदिर में पहुँच गये। और पुजारी से कहने लगे तू कैसा पुजारी है? भगवान को भोग नहीं लगाता, भगवान भूखे बैठे है वह बोला लगाता हूं भगवान खाते ही नहीं। इतने में ही राजा भी वहाँ भोग चढ़ाने आया, और भगवान आपका पुजारी आपके भगवान को भूखा मार देगा पुजारी बोला महाराज वह तो पत्थर की शिवपिंडी है, वह तो कुछ नहीं खाते। पुनः वे बोले खाते कैसे नहीं? राजा को भी आश्चर्य हुआ देखे कि यह कैसे खिलाता है? फिर उन्होंने राजा और पुजारी को मंदिर के बाहर निकाल दिया। और स्वयं अंदर घुस गये। अंदर मिठाईयों के थाल रखे थे और वे आराम से बैठ गये और पूरा भोग उन्होंने खा लिया, और फिर किवाड़ खोल कर बाहर निकले और थाली बाहर सरका दी देखो महाराज भगवान कितने भूखे हैं सब खा गये। राजा सोचने लगे कि एक आदमी तो इतना भोजन कर नहीं सकता, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती, इसका आशय यह है, दूसरा कोई अंदर गया नहीं छुपाकर नहीं रखा होगा, अलमारी कोई है नहीं आखिर भोग कहाँ गया इसका मतलब कि भगवान ने खा लिया होगा। अब लोगों की श्रद्धा बहुत उमड़ने लगी कि एक नया पुजारी आया है, वह भगवान को भोग लगाता है, पहले पुजारी तो ऐसे थे जो कि स्वयं खा जाते थे किन्तु ये तो भगवान को खिलाता है, अब पहले से और भी ज्यादा भोग आने लगा, और वे भी खूब खाने लगे। इतना खाया कि खाते खाते भस्म व्याधि रोग ठीक होने लगा।

जो पहले वाला पुजारी था उनको चिढ़ हुयी, क्योंकि उनकी रोजी रोटी

छिन गयी। क्या करें, ये करता क्या है? ये नया कहाँ से आ गया, थोड़ी जासूसी करते हैं तो उन्होंने एक बालक को मंदिर का जो कमरा था, उसमें एक नाली थी, पानी निकलने की, उस नाली में उस छोटे बालक को छिपा दिया और ऊपर से पीपल के पत्ते आदि डालकर ढ़क दिया। तो उस संमतभद्र जी का तो नियम बन गया सीधे आये थालियाँ लगी हुयी थीं, किवाड़ बंद किये आराम से खाया पिया और चैन से सो गये। बालक ने देखा, ये तो स्वयं खा रहे हैं भगवान को कहाँ खिला रहे हैं और पैर रखकर के सो रहे हैं। उस बालक ने यह देखा और बाहर निकलकर सब पुजारियों को सब वृतान्त बता दिया। पुजारी ने कहा तू भूल गया है, वह ऐसा नहीं कर सकता, दूसरे दिन बड़ा पुजारी मंदिर में छुपकर के बैठ गया, उसने भी यही सब देखा।

और बात राजा तक पहुँची, राजा गुस्सें में आया अरे, ये ऐसा धूर्त है भगवान की अविनय करता है, स्वयं खा पी जाता है। राजा ने कहा तू भगवान को नमस्कार भी नहीं करता, पूजा अर्चना भी नहीं करता। उसने कहा महाराज आप कैसी बात करते हो आप किसकी बातों में आ गये। तो राजा ने कहा ठीक है हम तेरी बात तब मानेंगे जब तू मेरे सामने इन्हें नमस्कार करेगा अब समंतभद्र स्वयं जाल में फँस गये क्या करें? नमस्कार तो करना ही नहीं है सच्चे देव शास्त्र और गुरु के सामने ही यह मेरा मस्तक झुकेगा, जो वीतरागी है, जिनागम है, आप्त द्वारा कथित गणधर परमेष्ठी द्वारा संग्रहित मुनियों द्वारा लिपिबद्ध ऐसे आगम के सामने झुकेगा या जो निर्ग्रंथ वीतरागी गुरु है उनके सामने झुकेगा हर कहीं नहीं झुक सकता। और समन्तभद्र स्वामी क्षत्रिय पुत्र तो थे ही स्वास्थ्य भी उनका ठीक हो चुका था, वही चेहरे पर तेज कोनी शांती। उन्होंने कहा महाराज अब आप आगंह कर रहे है तो मैं आपका समाधान करता हूँ। बोलिये क्या कहना चाहते हैं अगर आप दूसरों की बातों में गये है तो ठीक है, मैं नमस्कार करने के लिए तैयार हूँ किन्तु मेरे नमस्कार को आपके भगवान झेल पायेंगे कि नहीं झेल पायेंगे यदि कुछ हो गया तो जिम्मेदार मैं नहीं आप होगे। और नमस्कार मैं आज नहीं कल करूँगा सबके सामने। इस पिण्डी को सांकली से बंधवा देना, जितनी सुरक्षा कर सको उतनी कर देना।

राज को लगा बडे घमण्ड की बात करता है, कल देखतें हैं, यदि ऐसा कुछ नहीं हुआ तो तुम्हारा सिर अलग कर दिया जायेगा।

प्रातःकाल हुआ नगर में सभी तरफ चर्चा होने लगी, कहीं अनर्थ न हो जाये, हे भगवान! इस बालक की रक्षा करना, ये कैसा हठी है झुक जाता तो क्या हो जाता।

इधर समंतभद्र स्वामी को भी चिंता हुई कि कहीं जिन शासन की महिमा

घट न जाये, मुझे नमस्कार तो करना ही नहीं है, करना है तो सच्चे देव शास्त्र और गुरु। भगवान मेरा सर कट जाये किन्तु यह जिनशासन की प्रभावना करने का सुअवसर है, यह राजा शिव का भक्त है, यदि मैं इसे जिनशासन का अनुयायी न बना पाया तो बेकार। वे इसी उधेड़ बुने में लगे रहे, फिर प्रातःकाल के चौथे प्रहर में लगभग ४ बजे उन्हें जिनशासन की अधिष्ठात्री ज्वालामालिनी दिखी और कहा समन्तभद्र चिंता न करो, जिनशासन की प्रभावना होगी। आँख खुली तो और भक्ति आ गयी, सुबह दरबार में सभी लोग विराजमान थे। और वे भी बैठ गये। स्यंभू स्तोत्र पढ़ने के लिये--

यहां स १५० श्लोको का स्नोत पढ़ने लगे, २४ तीर्थंकरों की स्तुति अलग अलग करने लगे। चन्द्रप्रभु भगवान के प्रति उनकी विशेष आस्था थी, वनारस नगरी थी, चन्द्रप्रभु भगवान की जन्म स्थली। जैसे ही उन्होंने कहा ''वंद्येविवेद्यं महतो मशीन्द्र'' हे देवो के देव में आपकी वंदना करता हूँ सिर झुका पिण्डी फट गयी। सांकले टूट गयीं, भगवान चन्द्रप्रभु प्रकट हो गये।

महानुभाव! राजा नतमस्तक हो गया उसने जैन धर्म के महत्व को समझ लिया। पुनः समंतभद्र अपने गुरु महाराज के पास गये, जैनेश्वरी दीक्षा ली, संस्कार दुबारा हुये। उन्होंने खूब तपस्या की और ज्ञान की प्रभावना की। उनके पास पुनः शिवकोटि महाराज आये और दीक्षा की प्रार्थना करने लगे महाराज ने कहा तुम अभी दीक्षा नहीं ले सकते क्योंकि तुम्हारे मन में ये अहं भाव है, अभीकर्ता बुद्धि है कि मैंने एक करोड़ मंदिर बनवाये, तुम उसके स्वामी हो तुम उसे बेचकर के आओ तब तुम्हें दीक्षा मिलेगी। लौट कर आ गये, राजपाट छोड़कर दीक्षा लेने गये थे, उदास मन से लौट रहे थे कि जंगल में एक तैली व्यक्ति मिल गया, जो कि एक टोकरी में खली लेकर जा रहा था। उस तैली व्यक्ति ने कहा हमारे महाराज पैदल चले जा रहे वह उदास है क्या बात है? महाराज ने कहा कुछ नहीं फिर भी कई बार पूछने पर महाराज ने कहा मैं अपने शिव जी के मंदिर बेचने जा रहा हूँ। मैंने बनवाये और मैं उसका स्वामी हूँ, जब मैं उसका स्वामित्व छोड़ दूँगाा तब मैं जिनशासन में दीक्षित हो सकूँगा। उस व्यक्ति ने कहा महाराज उन्हें बेचने के लिये जा रहे हैं, तो मैं उसे खरीदता हूँ। महाराज को दे दिया, महाराज ये रही मंदिरों की कीमत, आज से मैं उनका स्वामी हूँ, आप ये बात मुझे कागज पर लिख कर दे दीजिये। महाराज ने भी एक कागज पर सब लिख दिया कि मैं इसका स्वामित्व छोड़ता हूँ और जिनशासन में दीक्षित होता हूँ।

महानुभाव!

उन समंतभद्र स्वामी ने बहुत प्रभावना की, रत्नकरण्डक श्रावकाचार आदि ग्रंथों को लेखन किया, लगभग १०-१२ ग्रंथ उन्होंने लिखे। वे आचार्य

समंतभद्र स्वामी जगह जगह कई राज्यों में गये। उन्होंने धर्म का डंका बजाया, अलग अलग राजा के यहाँ गये तो उन्होंने अपना क्या परिचय दिया

कांचा नग्नाटकोहं गलगलिनतनुलाग्तुशे पाण्डु पिण्ड
पुण्डोन्डंशाकभिक्षु दिशपुरं नगरे मिष्टभाजी परिब्राट
वाराणस्यां महोवोहं राश.....
.....

मैं एक सफेद वस्त्र धारण करने वाला पाण्डु पिण्ड बना, फिर बौद्ध साधु बना फिर दिशपुर में मीठा भोजन करने वाला परिव्राजक बना फिर मैं बनारस नगरी में आया वहाँ सफेद वस्त्र धारण करने वाला तपस्वी बना। जिसकी भी शक्ति हो, वह मेरे सामने आये। यह जैनवादी पुरुष भ्रमण कर रहा है, कैसे कर है? शेर की तरह से भ्रमण कर रहा है। तो उन्होंने पुनः आगे बात कही-

पूर्व पाटली पुत्र मध्य नगरे.....
.....

महाराज! पहले मैं पाटली पुत्र पटना गया, जहां ब्राह्मणों का राज्य चला, यहाँ ब्राह्मण वादी, वैदवादी थे, वहाँ मैंने भेरी बजाई, वहाँ मैंने सब ब्राह्मणों को नतमस्तक कर दिया, सिद्धान्त का खण्डन कर दिया, जैन बनाकर के आ गया। उसके उपरांत में मध्य प्रदेश में आया, उसके बाद मैं विदिशा विधर्व गया, वहाँ मैंने भेरी बजाई, उसके उपरान्त मालव देश, सिन्धुदेश, ढक्कदेश, कांचीपुर देश गया (दक्षिण भारत की तरफ) विदिशा नगर में गया, और मैं ऐसा गया कि मैंने वहाँ के विद्वानों को संकट में डाल दिया। और हे राजनू! आज भी मैं वाद की इच्छा से विचरण कर रहा हूँ, जैसे कोई शेर का बच्चा खेलता है, जिसका भी साहस हो वह मेरे पास आये और क्या परिचय दिया-

आचायेहि कविवृहं वादिराहो पण्डितोहं
.....
.....
.....।।

हे राजन। मैं कौन हूँ?

मैं आचार्य हूँ, मैं कविवर हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं वाद विवाद करने वाला निष्णात हूँ, मैं दैवज्ञ, ज्योतिष, निमित्त ज्ञानी हूँ, मैं आर्यवेदाचार्य हूँ, मैं पृथ्वी पर एक ऐसा आज्ञासिद्ध पुरुष हूँ, सिद्धों की तरह से विचरण कर रहा हूँ। मैं ऐसा हूँ।

महानुभाव! उन आचार्य समंतभद्र स्वामी ने जिन शासन का जो जयघोष किया, निःसंदेह यह प्रभावना दो हजार साल में अल्प आचार्यों ने की। यूँ तो वादि आचार्य अकलक स्वामी हुये, यूँ तो वाद विवाद को जीतने वाले वादी सिंह स्वामी हुये,

कुमुदचन्द्राचार्य हुये, शुभचन्द्राचार्य हुये, प्रभाकर स्वामी हुये, और भी कई आचार्य हुये, किन्तु इन्होंने जो डंका बजाया वह निःसंदेह सभी आचार्यों की दृष्टि में मान्य और पूज्य रहे। धर्म स्नेही महानुभाव!

आपको आचार्य समन्तभद्र स्वामी के बारे में एक कारिका सुनाते हैं।

आचार्य समंतभद्र स्वामी ने यूं तो अनेक ग्रंथ लिखे। वृहदस्वयंभू स्तोत्र, आप्तमीमांसा, रत्नकरण्डक श्रावकाचार, जीवसिद्धि, षटखण्डागम भी टीका भी लिखी, कर्म पद्धती इत्यादी कई ग्रंथ लिखे।

महानुभाव! रत्नकरण्डक श्रावकाचार श्रावकों के लिये रत्नों को पिटारा हैं। आचार्य समंतभद्र स्वामी की कारिका अतिथिसेवा के संबंध में-

उच्चैगोत्रं प्रणते र्भोगोदाना दुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दर रूपं स्तवनात्कीर्ती तपो निधिषु।।

उच्चैंगोत्रं प्रणते- हे संसार के भव्य महानुभावो यदि तुम्हें उच्चगोत्र की प्राप्ति करनी है तो तपस्वीयों को प्रणाम करो। तपस्वियों को प्रणाम करने से उच्चगोत्र की प्राप्ती होती है, उनका अपमान करने से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है। अपनी प्रशंसा करने से नीच गोत्र की व निंदा करने से उच्चगोत्र की प्राप्ति होती है। दूसरों की प्रशंसा करने से उच्चगोत्र की प्राप्ति, उनके दोष ढाँकने से उच्चगोत्र की प्राप्ति होती है।

महानुभाव! आचार्य ने कहा प्रणाम करने से उच्चगोत्र की प्राप्ति होती। तपस्वियों को सदैव प्रणाम करना चाहिये, निंदा करने से चक्रवर्ती राजा भी नरक में जा सकता है, त्रस, दो इन्द्रिय आदि पर्याय में जा सकता है, और साधुओं को नमस्कार करने से वह तिर्यंच जानवर भी देवगति में पहुँच सकता है। भोगोदानाति- यदि आपको उत्तम उत्तम भोगों की कामना हो तो, तपस्वियों को दान दो, खूब आहार दान दो क्योंकि यहाँ अगर आपने एक ग्रास आहार दिया तो उत्तम भोग भूति में, मध्यम भोगभूमि में, जघन्य भोगभूमि में जहाँ १० तरह के कल्पवृक्ष है, तीन दो एक पल्य की आयु है, जीवन भर कुछ भी काम नहीं है। किस पुण्य के आहार दान के फल से वज्रजंघ राजा ने अपने पुत्रों को पत्नी श्रीमति के साथ एक बार आहार दिया, बाद में स्वर्ग के भोगों को भोग कर, राज्य के वैभव को भोग कर बाद में आदिनाथ तीर्थंकर हुये, उसी आहार दान के फल से वह श्रीमती का जीव स्वर्ग और मनुष्य के भोग भोगकर के वह फिर राजा श्रेयांस बने व मुनिप्राणी जीव हुआ। एक आहार दान में चारों दान आ जाते हैं आचार्य कार्तिकेय स्वामी जी ने आहार दान अपने आप में तो दान है ही, वह औषध दान भी है क्योंकि सबसे बड़ा रोग है भूख का रोग, क्षुधा का रोग इसकी तृप्ति आहार से होती है, इसलिये आहार औषधि भी हो गया, यदि आहार न लेंगे तो न भजन में मन लगता है, न जाप में न ही ज्ञान की वृद्धि होती है, तो आहार दान ज्ञान दान भी है। और जब आहार लेंगे

तभी तो शरीर में प्राण ठहरेंगे और आहार न लेंगे तो शरीर से प्राण निकल जायेंगे, तो आहार दान अभय दान भी है, तो आहार दान चारों दान हैं।

महानुभाव! किसी अपेक्षा से आहार दान चारों दान हैं। आचार्य विमल सागर जी महाराज कहते थे भैया मुट्ठी भर आहार दान देने से मोक्ष मार्ग मिल जाता है और जो आहार दे रहा है वह मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति कर रहा है।

दाता दोंनो दान संभारे निश्चय दान, व्यवहार दान।
दाता दोनों धर्म संभारे श्रावक धर्म, मुनि धर्म।।

मुनि महाराज भी आपको चार दान देते हैं। पहला ज्ञान दान आपको जो उपदेश देते हैं, दूसरा ज्ञानामृत भोजन ज्ञानामृत ही भोजन है तो आहार दान हो गया, ज्ञान ही औषधि है निणवहेणपरमोषहि जिनवचन ही औषधि है जो जन्म मृत्यु जैसे रोगों को दूर करती है तो औषधि दान भी हो गया। और आपको अभयदान भी दिया कैसे कैसे क्यों भोगों में फंस कर अपनी जिंदगी बरबाद करते हो, धर्म ध्यान का सहारा लो चिन्ता न करो तो यह अभयदान हो गया। तो हम देते हैं निश्चय दान और आप देते हैं, व्यवहार दान। किन्तु तुम्हारें दान को लेकर ही हम निश्चय दान आपको दे पाते हैं। तो--

महानुभाव! आचार्य समंतभद्र स्वामी ने आगे क्या कहा उपासनात् पूजा यदि आपको पूज्यता की प्राप्ति करनी हो तो आप स्वयं उपासना करो यहाँ तो कहा तपोनिधिषु तपस्वियों की उपासना करो, उनकी पूजा करके तुम बन पाओगे।

भक्ते सुन्दर रूपं- साधुओं की भक्ति करने से सुन्दर रूप की प्राप्ति होती है। सहजरूप से भगवान की भक्ति करने वाले के चेहरे पर बहुत तेज और कांती रहती है।

स्तवनार्थ कीर्ति- साधुओं या भगवान की स्तुति करने से प्रशंसा करने से कीर्ति व यश की प्राप्ति होती है। तो महानुभाव! आचार्य समंतभद्र स्वामी जी की ये कारिका अपने जीवन में अंगीकार करना।

धर्म स्नेही बन्धुओं! यदि आपने यह कारिका अपने जीवन में अंगीकार करली तो मुझे लगता है आपको वह किरण मिल जायेगी जिसके सहारे आप सूरज तक पहुँच पाओगे। एक सही पगडंडी आपको मंजिल तक पहुँचा सकती है, महानुभाव! यह कारिका आपको अपनी आत्मा तक पहुँचा सकती है, धर्म से साक्षात्कार करा सकती है, आपको सुख शांति दे सकती है, इसे अपने जीवन में अंगीकार करने का प्रयास व पुरुषार्थ करें, जिससे आपका जीवन सार्थक व सफल हो जाये। इतना ही कहकर वाणी को विराम देते हैं।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

पाप और पुण्य

धर्म स्नेही महानुभाव!

जिनशासन की प्रभावना करने वाले दिव्याचार्यों की परम्परा में आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी हुये, जिनकी एक कारिका को सुनाकर धर्म की बात को आपको बताते हैं।

यदि पापनिरोधोअन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
यदि पापास्त्रवोअस्त्यन्य सम्पदां किं प्रयोजनम्।।

महानुभाव,

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख और शांति चाहता है, इस संसार में कोई भी व्यक्ति खोजने पर नहीं मिलेगा, जो दुःख और अशांति चाहता हो, कोई जीव ऐसा नहीं है।

''जो त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहे दुख से भवंत।

किन्तु सुख चाहने मात्र से मिलता तो नहीं है। सुख को प्राप्त करने का उपाय आचार्य अजीत सेन सूरी ने बताया-

हे संसारी प्राणियों पुण्य कार्य करो, धर्म में संलग्न रहो, तो तुम्हें जीवन में सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होगी। जिसने पुण्य नहीं किया हो और पुरुषार्थ कर करके अपने जीवन का अंत कर दे तो भी सुख नहीं मिलेगा। सुख मिलता है अपने पुण्य के द्वारा दूसरे का किया पुण्य तुम्हें सुख नहीं दे सकता। राजा के घर में पैदा होकर भी व्यक्ति दुखी हो सकता है यदि स्वयं का पुण्य नहीं हो तो। आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी कहते है ''पुण्यफला अरिहन्त'' अवस्था तक की प्राप्ति है। तीर्थंकर प्रकृति भी पुण्य का फल है, संसार में जितनी भी इष्ट अनुकूल अवस्थायें है, वे सब पुण्य के माध्यम से ही प्राप्ति होती हैं और पुण्य नहीं है तो-

महलों में तड़पते देखा है
महलों में सती होते देखा है
महलों में भी जौहर दिखाते देखा है
महलों में रक्त पात होते देखा है।

जब पुण्य नहीं होता है।

जब पुण्य नहीं होता है तो जंगल में पड़ा हुआ अनाथ बालक भी पल जाता है, और वह राजा बन जाता है, पुण्य उनका है जो श्मशान में उसका जन्म हुआ था जीव घर कद वह पाला गया पुत्र की तरह से राज्य किया, दीक्षा लेकर मुक्ति को प्राप्त किया।

कहने का आशय यह है पुण्य सबसे बड़ी चीज है, पुण्य यदि है, तो सब

कुछ है, तो आचार्य महोदय कहते हैं यदि तुमने पाप कार्य छोड दिये तो भौतिक सम्पत्ती का क्या प्रयोजन पुण्य के उदय में मिट्टी भी छूओं तो वह सोना बन जायेगी। पुण्य के उदय में जहर भी औषधि का काम करता है। और पाप का उदय हो तो घर में भी रोटी नहीं मिलती, पाप के उदय में मां भी अपने बेटे का भक्षण कर जाती है, यदि पाप पास है तो तुम्हें कोई नहीं देगा।

सभी मनुष्यों के पास चार साधन है पुण्य कमाने के और पाप कमाने के। चाहे उससे पुण्य कमालो चाहे पाप कमालो, इच्छा तुम्हारी है। जैसे किसी व्यक्ति के पास गाड़ी है तो वह किसी तीर्थक्षेत्र पर जा सकता है, और चाहे तो शराब के ठेके पर भी जा सकता हे। तो वस्तु आपके पास है उसका आप सदुपयोग भी कर सकते हो, दुर्पयोग भी कर सकते हो। दुर्पयोग करोगे दर्गति तो सदुपयोग करोगे तो सद्गति। ऐसे ही चार साध प्रत्येक मनुष्य को मिले हैं-

पहला साधन है तनः-

सभी के पास शरीर है, इस शरीर से पुण्य क्रिया की जा सकती, पा क्रिया भी की जा सकती है। इस शरीर के माध्यम से साधुओं की सेवा की जा सकती है, भगवान की पूजन, अभिषेक भी किया जा सकता है, पैदल साधुओं का विहार भी किया जा सकता है, तीर्थयात्रा की जा सकती है, इस शरीर के माध्यम से और भी अच्छे कार्य किये जा सकते हैं।

और इस शरीर के माध्यम से जीव हिंसा भी की जा सकती है बिना देखे चले हजारों जीवों की सिा हो सकती है, इस शरीर से झाडू लगा रहे हजारों जीव मर रहें हैं, घास पर घूम रहें हैं जीव मर रहे हैं, तो शरीर के माध्यम से पाप भी किया जा सकता है, इच्छा आपकी है।

महानुभाव!

जिनवाणी के दो शब्द आपके पास हैं, आप जानते हो, पाप करने से दुर्गति होती है, फिर भी पाप करो तो दोष इसमें किसी का नहीं है, दोष खुद अपने आप का है।

जैसे इस शरीर से तुमने भोजन बनाया, पाप तो लगा क्योंकि पानी लाये, चूल्हा आदि जलाया, किन्तु आपने वही भोजन ऐसे बनाया कि हे भगवान! मैं इस भोजन में से दो ग्रास किसी मुनि महाराज को दे दूं, तब मैं आहार करूं, तो वह पाप थोड़ा कम हो गया समंतभद्र स्वामी कहते हैं कि व्यकित खून से खून का दाग धोना चाहते हैं पाप से पाप को साफ करना चाहता है, एक पाप को करने के लिये दूसरा पाप करता है उसे ढ़ांकने के लिये, किन्तु कभी भी खून से खून का दाग साफ नहीं होता, यदि कभी धुलेगा तो वह जल से ही साफ होगा।

कर्मभुवनष्टि खलु.....अतिथि.....

रुधि.....

जैसे जल के द्वारा खून का दाग धो दिया जाता है, वैसे ही गृहत्यागी व्रती को दिया गया आहार तुम्हारे कर्ममल को प्रक्षालित करने में समर्थ होता है। दूसरा साधन है वाणी-'' वचन''

किसी की वाणी वाण का काम करती है और किसी की वाणी वीण का काम करती है। वाणी तो कैसी होनी चाहिये-

ऐसी वाणी बोलिया मन का आपा खोय,

औरन को शीतल करे आपहुं शीतल होय

तुम्हारे पास यदि वचन वर्गणा है, तो ऐसे वचन बोलिये जिये सुनकर दूसरे के कान में मिशरी सी घुल जाये। शांति मिले, आनंद आये अन्यथा मौन ले लो।

बचने का गरिजता- वचनों में दृढ़ता किसी बात की, मीठे-मीठे शब्द बोलो, अच्छे शब्द बोलो।

रुतवा घट गया होता कि, जीभ घिस गयी होती।

जो गुस्से में कहा तुमने वही प्यास से कहा होता।। यदि प्रेम से कहोगे तो व्यक्ति मान भी लेता है। क्रोध से क्रोध की अग्नि भ्रमक जाती है शांत नहीं होती, मीठे शब्द बोलने से भाव अच्छे होते हैं तो पुय आश्रव होता है, कड़वे शब्द बोलने से कषाय उत्तेजित होती है तो पाप का आश्रव होता है।

तो महानुभाव! आपके पास वचन वर्गण है, मधुर कंठ है तो उससे भगवान की पूजा, भक्ति, अर्चना, इत्यादि पुण्य क्रिया कर सकते हो, और चाहे तो उस कंठ से राग के गीत गाकर, स्वयं राग में फंस रहा है, दूसरों को फंस रहा है तो पाप क्रिया कर सकता है।

सा जिल्हा या दिवस्तुती जिव्हा तो वहीं सार्थक है जो भगवान की स्तुति करे। तो महानुभाव दूसरा साधन है पुण्य और पाप का वह है वाणी। वाणी ऐसी हो जो दूसरों को चुभे न। किन्तु व्यक्ति कहता है

वाणी ऐसी गोलिये, कोई सुन नहीं पावे,

सुनने वाला फड़क फड़क कर रोवे।

ऐसे शब्द जैसे अंधों के अंधे होते हैं, इतने से शब्द बोले और पूरा महाभारत हो गया, तो ऐसे शब्द जो महाभावत करा दे वे नरक के कारण होते हैं, और जो शब्द महाभारत जैसे युद्ध को भी शांत करा दें वे शब्द देवगति के कारण होते हैं। और तीसरा साधन है पुण्य और पाप कमाने को मन

ये मन सबसे ज्यादा पुण्य और पाप कमाता है।

''मन एव मनुष्यानाम कारणं बन्ध मोक्षयो''

मन ही मनुष्य के लिये बन्ध और मोक्ष का कारण हैं। क्योंकि सबसे ज्यादा आश्रव मन से ही होता है। चाहे पुण्य का हो चाहे पाप का। मन से लगभग ८५७० आश्रव होता हैं और वचनों से लगीाग १२७० आश्रव होता है और शरीर के माध्यम से ३७० आश्रव होता है। जैसे कोई व्यक्ति मंदिर में बैठ गया। पूजा उसने की किन्तु पूजा में उसका एक सैकिण्ड भी मन नहीं लगा और मुख से भी एक शब्द नहीं बोला मौन बैठा रहा, इस थाली के फल उस थाली में चढ़ा दिये तो वह पाप से तो बचा। बात १०० प्रतिशत सही है किन्तु पुण्य का आश्रव केवल ३ प्रतिशत हुआ। १०० प्रतिशत घाटे से तो बचा किन्तु लाभ ३ प्रतिशत हुआ। १०० रु० का कार्य करने पर भी ३ रु० ही मिले।

दूसरा व्यक्ति ऐसा था वचनों से पूजा पाठ की, द्रव्य भी चढ़ाई, किन्तु मन एक सैकण्ड भी नहीं लगा तो वचन व शरीर से किया तो उसे १५ प्रतिशत पुण्य मिला।

एक व्यक्ति ऐसा आया जिसने मन भी लगाया, वचन भी लगाया, शरीर से क्रिया भी की तो उसे १०० प्रतिशत पुण्य मिला।

एक व्यक्ति से आया जिसके पास द्रव्य भी नहीं है, बोलने के लिये जाप भी नहीं, जिनवाणी भी नहीं और उसकी खूब भावना थी पूजन करने की वह कह रहा है आंख बंद करके कि हे भगवान! मैं पूजा भक्ति ये ही समझो मैं गाड़ी में बैठा हुआ हूं, आपके दर्शन नहीं मिल पा रहे हैं, मेरा नियम था किन्तु इसके बदले में मैं एक रस का त्याग कर दुंगा, जाप लगा लूंगा। और दो घंटे तक ऐसे ही बैठा रहा जैसे मंदिर में बैठा है और दो घंटे तक उसकी आंखों से भगवान दूर नहीं हुये। तक उसे पूजा का ८५ प्रतिशत पुण्य मिलेगा क्योंकि उसने सिर्फ मन से पूजा की।

तो मन बहुत बड़ी चीज है। अब पाप की बात सुनो-

जैसे बैठे हैं, कोई काम नहीं है सोच रहे हैं उसने मुझसे ऐसे कह दिया था, अब उसके बारे में बुरा बुरा सोच रहे हैं तो पाप का बंध हो रहा है, जैसा सोचोगे वैसा ही पाओगे, उस बुरा सोचने वाला का नियम से बुरा ही होता है, और अच्छा सोचने से अच्छा ही होयेगा। यदि हम दूसरे के लिये प्रकाश करना चाहते हैं तो वह हमारे लिये लाभ दायक है, दूसरों को फूल देना चाहते है, तो फूल की खुशबू उसके पास पहुंचेगी उससे पहले हमारे पास आयेगी, हमें पहले तृप्त करेगी, और इसके यदि किसी का बुरा करे जैसे किसी दूसरे पर अग्नि का गोला फेंकते हैं तो दूसरा जले न जले पहले फेंकने वाले का हाथ जलता है, तो महानुभाव! कहने

का आशय यह है कि हमें अच्छे भाव रखने चाहिये संसार के प्राणी मात्र के लिये।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

हे भगवान! संसार में सभी जीव, सुखी हो, सभी जीव निरोग हों, सभी जीव कल्याण को प्राप्त हों, और किसी को दुख भूलकर भी प्राप्त न हों, संसार का प्रत्येक जीव एक इन्द्रिय जीव से पंचइंन्द्रिय जीव, मेरा शत्रु भी सुखी रहे, उसे भी सद्भक्ति की प्राप्ति हो ऐसी भावना भाओ।

मैंत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।

दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा श्रोत वहे।।

महानुभाव तीन साधन हुये मन, वचन, काय। और चौथ साधन है धन धन के माध्यम से भी पुण्य पाप किया जा सकता है। हम पढ़ते हैं बहु धन बुरा हूं भला कहिये, लीन पर उपगार सों।

''बहु आरम्भ परिग्रहस्य नारकस्यायुषः

बहुत आरम्भ परिग्रह नरक आयु के आश्रव व बंध का कारण है। फिर भी कहते हैं यदि ऐसी बात थी तो चक्रवर्ती आदि के पास बहुत वैभव था, किन्तु उनहोंने खूब दान, पूजा पाठ और पुण्य किया।

जो चार प्रकार के दानों या धर्म में, साधु की सेवा में लग जाता है वह पुण्य का आश्रव काने वाला धन होता है।

आपने धन से मकान बनवाया पाप का आश्रव उसी धन से मंदिर बनवाया तो पुण्य का आश्रव होता है। उसी धन से शादी का कार्ड छपवाया उसी धन से जिनवाणी छपवाना, यह है कि अपने ऐशों आगम के लिये आपने कुछ किया तो पाप का आश्रव ममता जहां होती है, ममत्व जहां होता है वहां पाप है। जहां समता भाव होता है वहां पुण्य होता है। मंदिर जिनालय समता के आलम होते हें और घर ममता के आलय होते हैं। इसलिये महानुभाव कहने का आशय यह है कि अपना मन, वचन तन व अपना धन ये चारों पुण्य के मार्ग में, पुण्य के क्षेत्र में लगायें और अपना पुण्य बढ़ायें।

महानुभाव! पुण्य से बड़ी वसतु और कोई संसार में नहीं है। यदि पुण्य आपकी सत्ता मैं नहीं है, तो आपका किया हुआ पुरुषार्थ भी आपकी सहायता नहीं कर सकता। इसलिये ये चार साधन हैं जिनके माध्यम से पुण्य कमायें और इनके सदुपयोग कर आप अपनी आत्मा का कल्याण करें। इनहीं सद्भावना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

भावना

धर्म स्नेही बन्धुओ!

द्रव्य की कमी नहीं है, आज भी संसार में पर्यापत धन सम्पत्ति है पूरा विश्व यदि नित्य दिन में छः वार भी भोजन करे तक भी धन की कमी नहीं हे। कभी है भावनाओं। कुछ लोग करोड़ पति बने बैठे हें तो कुछ लो ऐसे भी हें जिन्हें एक बार भी भोजन नहीं मिल रहा है। ऐसा भी है कुछ लोग अपने पास १०० जोड़ी कप्उे रखे हुये हैं, एक कपडे को पहनने के बाद उसका नम्बर साल भर बाद आता है और कुछ लोग ऐसे भी है जो ऐ जोड़ी कपडे को १० साल तक पहनकर अपना काम चलाते हैं। महानुभाव!

बात भावना की ही है। एक व्यक्ति के पास १० किलो चांदी रखी है उसने १६ हजार रु० किलो में खरीदी। वह चांदी अब २४ हजार रु० किलो हो गयी। तो उसे ८० रु० का लाभ हो गया। दूसरे व्यक्ति के पास भी १० किलो चांदी थी। किन्तु वह १६ हजार रु० किलो के भाव में नहीं खरीद पाया। उसने २४ हजार रु० किलो में खरीदी, उसे उम्मीद ये थी कि चांदी भाव और बढ़ जायेगा। तो उसे ८० हजार रु० का घटा मिले। वसतु वही है, उतनी ही है द्रव्य में कमी नहीं, कमी आयी भावों में। वस्तु की इतनी महत्वता नहीं है जितनी भावों की महत्वता है।

एक सामान्य श्रावक आज भगवान की पूजा करके, अभिषेक करके उतना ही पुण्य कमा सकता है, जितना सौधर्म इन्द्र साक्षात रूप से जिनेन्द्र भगवान की पूजन करके कमाता है। किसके बल से भावना के बल से। यदि भावना शुद्ध है तो व्यक्ति के विकास में, उन्नति में कहीं समय लगने वाला नहीं है। यदि भावना दूषित है तो पतन में भी देर नहीं लगती। जो पाप अति तीव्रता से किया जाता है, एक साथ किया जाता है, तो वह पाप एक साथ उदय में आता है। और व्यक्ति सैकिण्डों में अरवपति से रोडपति हो जाता है। भूकम्प आया ५० करोड़ की कोठी धराशायी हो गयी उसमें ३ अरव का माल भी जलकर स्वाहा हो गया, वह राजा था भिखारी हो गया। और पुण्य का उदय भी कैसे आता ह, जिसने गुप्त पुण्य किया हो तिव्र पुण्य किया हो एकात्मक धनवान हो जाता है। शाम को व्यापार का भाव कुछ है और सुवह कुछ और हो गया भाव दो चार गुने बढ गये, जिस वसतु को हाथ लगाये भाव बढता चला गया। वह व्यक्ति राजा बन गया। या मकान बनवा रहे थे, मकान की नींव में खुदवाते समय स्वर्ण कलश रत्नों से भरा हुआ निकल आया, तो एकाएक धनवान हो गया। महानुभाव कितना समय लगा, बहुत कम किन्तु जब पुरुषार्थ किया था, वर्षों तपस्या, उपवास किये थे, नियम, व्रत का पालन किया था, जिनेन्द्र भगवान की पूजन अर्चन की थी उस समय तो बहुत समय लगा था किन्तु उदय में तीव्रता से आ गया।

एक बार भी यदि विशुद्ध भावों के द्वारा भगवान की प्रतिष्ठा कर ली, यदि शुद्ध भावों के द्वारा किसी महाव्रती साधु को दान दे दिया एक बार का दिया हुआ दान आपको इना वैभव दे सकता है जिसे १०० भवों में भी नहीं खा सकते।

महानुभाव!

एक श्रावस्ती नगरी में सेठ, कौशाम्बी नगरी में दूसरा सेठ दोनों सेठ बडे सम्पन्न। किन्तु कर्म कब किसका कौन सा उदय में आ जाये कह नहीं सकते। श्रावस्ती नगरी का सेइ अपने पूर्व पुण्य के उदय से बढ़ता ही चला गया, और कौशाम्बी नगरी का सेठ अपने पाप के उदय से घटता ही चला गया। स्थिति ये आ गयी कि कौशाम्बी नगरी के सेठ के पास खाने पीने तक के लिये कुछ न बचा, भिक्षावृत्ति करनी पड़ी। उसकी पत्नी ने कहा तुम्हारे पिता जी बहुत बडे सेठ थे, बहुत सम्पत्ति थी, बहुत पुण्य कर्म भी किये हैं मेंने सुना है जो श्रावस्ती नगरी का सेठ हे वह पुण्य खरीद लेता है, उसके पास अपना पुण्य बेचकर या गिरवी रखकर कुछ धन सम्पत्ति ले आओं। व्यापार करो जिससे अपनी आजीविका चल सके। उसने कहा ठीक है और वह कौशाम्बी नगरी का सेठ चल दिया। और वह बडे अहं भाव से चला जा रहा है मेरे पिता जी ने बहुत पुण्य कार्य किये, मैंने भी यिक। रास्ते में एक जगह नहीं किनारा देखकर रुका, दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर के भोजन करने के लिये, उसकी पत्नी ने दाल और चवल रख दिये थे, छोटी सी पोटली थी खोलकर सोदने लगा और सोचने लगा दो ईंट मिले जाये, लकड़ी जलाकर दाल चावल उवालकर ज्यों की त्यों खा लुंगा जिससे कम से कम वृप्ति हो जायेगी। वह ऐसा सोच ही रहा था कि तभी उसकी निगाह सामने के तम्बू पर पड़ी उसने देखा वहां कोई आदमी भी होगा, और उसके पास चूल्हा भी होगा तो वहीं मैं दाल और चावल की खिचड़ी बनवा लुंगा। उसके पास पहुंचा वहां रसोई बन रही थी, उसने कहा भईया तुम हमारा एक उपकार कर दो, हमारे पास र्वन नहीं है, कुछ नहीं है हमें वर्तन मांगकर लाना पडेगा, लकड़ी बीनकर लानी पडेगी, तब कहीं जाकर हम खिचडी बना पायेंगे, इन दाल चावल की तुम खिचड़ी बना दो। और उसने कहा ठीक है कौन सी बड़ी बात है, यह तो मेरा कर्तव्य है। और उसने खिचड़ी बना दी। फिर पुनः उस व्यक्ति ने कहा ऐसा कर तू अपने दाल चावल रख, तू यहीं भोजन कर लेना, वह बोला नहीं भईया तुम तो मेरी खिचड़ी ही बना दो। खिचड़ी बन गयी।

वह जो सेठ ठहरा हुआ था, जिसके डेरे वहां लगे थे तम्बू लगा हुआ था, बड़ा धर्मात्मा था। उसका नियम था बिना त्यागी व्रती को आहार दिये बिना भोजन नहीं करता था। तो वह व्यक्ति जिसकी खिचड़ी बन चुकी थी वह तो बाहर बैठा था और वह सेठ जिसका नियम था सोच रहा है जंगल में कौन आयेगा? किसको मैं आहार दूं, आज तो उपवास करना पडेगा, कोई बात नहीं। वह बाहर आ गया मंगल

कलश लेकर के खड़ा हो गया, भावना भा रहा है प्रभु! मुझे इस बात का दुख नहीं है कि आज मैं आहार नहीं दे पाऊंगा तो भूखा रह जाऊंगा, किन्तु मुझको विकल्प इस बात का है कि आज मेरा कसा पाप का उदय आ गया कि मैं त्यागी व्रती को आहार न दे पाऊं। हे भगवान! जो मैंने पुण्य संचय किया है उस पुण्य के संचय के माध्यम से यही चाहता हूं कि में पुण्य का कार्य करता रहूं। भावज्जवन आपकी भक्ति करता रहूं।

उसके पुण्य के प्रभाव से जंगल में एक ऋद्धिधारी मुनिमहाराज आये, आकाश मार्ग से चलते हुये आ गये उसने देखा प्रसन्नचित्त हो गया, गदगद हो गया। बड़ी भक्ति के साथ पड़गाहन करने लगा हे स्वामिन! हे त्रिलोकी नाथ! हे योगीश्वर! हे परमेश्वर! आज मेरा जीवन पाव हो गया, धन्य हो गया कृत्य हो गया, बड़ी भक्ति के साथ तीन परिक्रमा लगाता है। वह महाराज को चौके में ले गया, चौके में जो व्यंजन बने थे सब दिखाये किन्तु संयोग की बात महाराज जी ने सब निकलवा दिया, कुछ भी नहीं पानी अकेला रह गया। अब वह सेठ सोचता है महाराज कुछ नहीं ले रहे, तो चलो खिचड़ी दिखा दें, परन्तु वह खिचड़ी मेरी नहीं है वह तो सामने वाले सेठ की है। बाहर से वह कहता है भईया महाराज जी को खिचड़ी और दिखा दो, हो सकता है खिचड़ी का त्याग नहीं है। महाराज ने तीन अंजुली खिचड़ी ली, पानी पिया और बैठ गये। पुनः आकाश मार्ग से चले गये, किन्तु वह श्रावक जिसने आहार दिया था वह खुश भी हो रहा है और अफसोस भी कर रहा है कि चौके में मेंने इतना सामान बनवाया, दाल चावल भी मेरे पास थ, मैंने खिचड़ी क्यों नहीं बनवा ली। अफसोस ये है कि मैंने महाराज को आहार तो दिया किन्तु ये दाल चावल तो मेरे नहीं थे, मेंने तो एकनौकरी रने वालावा व्यक्ति जैसा हो गया, दूसरे का आहार दिया है मुझे क्या मिलेगा। और जो दूसरा व्यक्ति जो बाहर बैठा है, गदगद हो रहा है कह रहा है आज तो आनंद आ गया, मैंने जीवन में पहले कभी बचपन में आहार दिया होगा किन्तु आज भले ही मैंने आहार दान नहीं दिया, किन्तु अनुमोदना तो करी, मेरी द्रग्रास खिचड़ महाराज के पेट में पहुचं गयी, सबसे बड़ा मेरा सौभाग्य है, और ऐसे मुनि महाराज के उदर में जो ऋद्धिधारी मुनिराज हैं। अब पुनः उस सेठ ने कहा सब लोग भोजन करो, जिस व्यक्ति के दाल चावल की खिचड़ी बनी थी, वह बोला भईया अब मैं जा रहा हूं सेठ बोला कहां जा रहे हो, जो खिचड़ी बनी है वह तो खाते जाओ, वह व्यक्ति बोला नहीं नहीं खिचड़ी महाराज जी के लिये चल गयी, बस में खुश हूं। सेठ ने कहा तुम यहां से जा नहीं सकते और जबरदस्ती उसे भोजन के लिये बैठा लिया, और सब पकवान उसे खिलाये अब वह तृप्त हो गया। और अब वह व्यक्ति श्रावस्ती नगरी के लिये चल दिया। पूर्णिमा सेठ के पास पहुंच गया। वहां पहुंचा, वहां बहुत भीड़

लगी थी, सब अपना पुण्य गिरवी रख रहे थे। अब इस व्यक्ति का नम्बर आया। बोला सेठ जी कर्म को खेल है, कभी जब हमारे पिता जी थे, तो उनका वैभव आपके वैभव के लगभग बराबर था, किन्तु आज मुझे आपके दरवार में आना पड़ा, तो वह पूणिया सेठ बोला तो क्या हुआ तुम भीख मांगने थोडे ही आये हो, अपने पुण्य को गिरवी रखने आये हो, आगे पुण्य कमाओगे तो मालामल हो जाओगे। अपना पुण्य लिखो उसने चिट लिखी मेरे पिता जी ने अपने जीवन में १०० कुयें बनवाये थे, उससे जो पुण्य मिले उसे मैं गिरवी रखता हूं तराजू पर रखा पलड़ा ज्यें का त्यों रहा। जरा हिला भी नहीं मेरे पिता जी ने अपने जीवन में ४२ स्कूल बनवाये उसक पुण्य पलडा विल्कुल न हिला, मेरे पिता जी ने गरीबों को २० साल लगातार प्रतिदिन दान बांटा था, उसका पुण्य वह पलड़ा हिला भी नहीं वह कहता है तू भईया क्या कर रहा है बोला पिता जी का पुण्य रख रहा हूं वह बोला पिता जी का पुण्य तेरा काम नहीं आयेगा अपना पुण्य लिख अच्छा ठीक है सोचता है मैंने अपने जीवन में एक बार जो राज मार्ग था उसे बनवाया था उसका पुण्य चढ़ाता हूं उसमें से आवाज आयी अपने नाम के लिये किया। वो पुण्य वहां चला गया। मैंने दस गरीब बच्चों को पढ़ाया, उनसे फीस मैंने भरी उसका पुण्य रखता हूं उसमें से फिर आवाज अपने नाम के लिये किया। जो भी वह रखता जाये, उसमें से आवाज आये यह तूने अपनी प्रतिष्ठा के लिये किय, वह तुझे मिल गया। अब तूने कुछ और पुण्य किया हो तो सोच। वह कहता है। रास्ते में चलते चलते मुनि महाराज ने खिचड़ी का आहार तो किया था, उसमें पुण्य मिलने वाला नहीं था, उन्होंने सिर्फ ३ ग्रास खिचड़ी ली और में पेट भरके पूरा भोजन करके आ गया उसका पुण्य कहां मिलेगा बताओं? फिर भी उसने चिट लिख दी मैंने जंगल में ऋद्धिधारी मुनिराज को आहार दान की अनुमोदना की, अपने हाथ से नहीं दिया, किन्तु मेरी वस्तु आहार में चल गयी, उससे जो मुझे पुण्य मिला हो वह पुण्य में यहां रखता हूं, चिट जैसे ही रखी पलड़ा नीचे झुक गया। पूनिया सेठ` कहा लाओ अशफी और इसे दे दो, वह अशर्फी चढ़ता गया पलडा उठा ही नहीं, वह बोला अशर्फी छोड़ों, सोना चांदी लाओ फिर भी पलड़ा नहीं उठा, फिर रतन चढ़ाये लेकिन पलड़ा नहीं, सेन ने और कीमती रतन चढ़ाये तब थोड़ा सा पलड़ा हिला फिर सेठ बोलाकि तेरी पुण्य की बरावरी का धन तो मेरे पास नहीं है, तुऐ जितनी आवश्यकता हो वह ले ले। वह बोला मैं अपने पुण्य को बेच नहीं रहा तुम ऐसा करो मुझे उधार में १०० सोने के सिक्के दे दो, उससे मैं व्यापार करूंगा, और फिर तेराधन वापस कर दूंगा। जब एक बार मुनि महाराज के आहार की अनुमोदना करने से तीन ग्रास खिचड़ी देने से इतना पुण्य हो सकता है, अब आप मुझे ये १०० सिक्के दे दो मैं व्यापार करूंगा और में भी ऐसी ही नियम लूंगा, बिना आहार कराये मैं भी जीवन में आहार नहीं

करूंगा।

महानुभाव!

आहार आद दान देने से दस प्रकार के कल्पवृक्षों द्वारा प्रदत्त अलग अलग भोंगों की प्राप्ति होती है, चक्रवर्ती के भोगों की प्राप्ति होती है। महानुाव! जिनेन्द्र भगवान की पूजा अर्चना करने` शांतिमय पुण्य का बंध होता है। चन्द्रमा की प्रभा के समान शीतल, जिनका चारित्र था, चन्द्रमा की प्रभा के समान जिनका निर्मल ज्ञान था, जो प्राणी मात्र को चन्द्रमा के समान सुख शांति देने वाले थे, ऐसे सोम प्रभ आचार्य ने मुग्धिसुग्धावली ग्रंथ में सिन्दू प्रकरण नामक ग्रंथ में बहुत अच्छी कारिका लिखी भक्ति के संबंध में उनहोंने क्या लिखा------

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति, व्यापादयात्यापदं।
पुण्य संचनुते श्रियं वितनुते, पुषणाति नीरोगता।
सौभाग्यं त्यवर्धात पल्लवयति, प्रतिंप्रषूतेयशः।
स्वर्ग यश्रति निवृतिं चरणय, चर्चार्हताम् निहिताम्।।

आचार्य महोदय कह रहे हैं अर्हन्त भगवान की पूजा रचने से क्या फल मिलता है? यदि किसी भव्य जीव ने विशुद्ध परिणामों से भगवान के सामने मुट्ठी भर चावल भी चढ़ा दिया, उसके भाग्य का सितारा चमक गया। वह मेढ़क देखों भक्ति से प्रभुदितं होकर अपने मुख में कमल की पांखुड़ी दवाकर जा रहा था, राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे बरकर के मर गया, फिर भी सौधर्म स्वर्ग में जाकर के देव हो गया और राजाश्रेणिक से पहले महावीर स्वामी के समवशरणं में पहुंच गया। तो उसने पूजा भक्ति कैसे की थी---

यदर्चा भावेन प्रमुदित मनः दर्दुर इह।
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुख निधि।।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुख समाजं किमुतदा।
महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवंतु में।।

वह मेढ़क अर्चना के भाव से महावीर स्वामी के समवशरण में जा रहा था, वह बहुत आनंदित था। धर्म का काम करो आनंद से करो दान दो तो आनंद से दो---

दान देत मन हरष विशेखे, इहभव जस परभव सुख देखे।।

ते दान, पूजा सब आनंद से करने से पुण्य की व्रद्धि बहुत होती है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति करने का सौभाग्य पुण्यात्मा जीव को मिलता है, प्रत्येक व्यक्ति भगवान की पूजा अर्चना नहीं कर सकता, यहां तक कि पूजा भक्ति की अनुमोदना भी नहीं कर सकता।

अर्हतां अर्चता अर्चा निर्मिता

जो अरहंत भगवान की अर्चना करते हैं, रचते हैं, भगवान की मूर्ति बनवाते मंदिर बनवाते हैं आचार्यों ने लिखा है वे ७ या ८ भव में मोक्ष चले जाते है। यदि सरसों के दाने के बराबर भगवान की मूति बनवायी और धनिया के दाने के बराबर भी मंदिर बनवाया ऐसा भव्य जीव ७ या ८ भव में मोक्ष चला जाता है।

महानुभाव!

जो जीव बड़ी बड़ी मूर्ति बनवा रहे हैं, जो जिनालय बनवा रहे हैं वे और जल्दी चले जायेंगे, हां यदि जल्दि जा सकते हैं यदि भावना से वह काम किया हो तो। यदि भावनाओं से पुण्य कार्य किया हो तो आचार्य सोमप्रभ कहते हैं।

पापं लुम्पति--- जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने से पापों का नाश होता है। जैसे सूर्य को देखकर के अंधकार भाग जाता है ऐसे ही जिनेन्द्र भगवान का नाम लेने से पाप नहीं रहते और जहां पाप रहते हैं वहां आप नहीं रहते। जिसके हृदय में जिनेन्द्र भगवान विराजमान हो उसका हृदय शुद्ध है, कषाय वासना सबसे रहित हैं उनके ही चित्त को निर्मल करने वाली यह अर्हंत भगवान की भक्ति होती हे।

अर्हद भक्ति सदामन आने, जो जन, विषण कषाय न जाने।

दुर्गतिं दलयति- दुर्गतियों का नाश हो जाता है।

व्यापादयात्यापद- आपत्तियां-विपत्तियां सब नष्ट हो जाती है।

पुण्य संचनुतेश्रियंवतनुते पुषाणति नीरोगतां- जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने से पुण्य का संचय होता है, सातिशय पुण्य का संचय होता है और श्री (लक्ष्मी) की प्राप्ति होती, जिनेन्द्र भगवान की भक्ति निरोगता का पोषण करने वाली होती है, कैसा भी रोग हो भक्तामर में पढ़ते हैं।

उद्भूत भीषण जलोधर भार भुग्नाः।
शेच्यां दशामुपगताश्च्युत जीव ताशा।
त्वद्पाद पंकज रजोमृत दिग्ध देह्य।
मृत्या भवन्ति मकरध्वज तुल्य रूपाः।।

हे भगवान! जिसको इतने भयंकर रोग हो गये हो कि जीने की आशा छोड़ दी हो किन्तु आपका नाम लेने मात्र से उसका तन सुन्दर हो जाता है काम देव सा, वह निरोगी हो जाता है।

सौभाग्यं व्यधाति पल्लवभुति प्रीतिं प्रषूतेयशः- भगवान की भक्ति करने से सौभाग्य का उदय होता है, आपके भाग्य का १०० गुना अधिक होगा, और जीवन में प्रेम का संचार होता है, अनुराग की वृद्धि होती है तीनों लोकों में जिनेन्द्र भक्त का यश फैल जाता है, इसके साथ साथ स्वर्ग यक्षति स्वर्ग को देने वाली है।

निवृति- स्वर्ग को ही नहीं, परम्परा से मोक्ष को देने वाली है।

शुचिता अर्थात् शुद्धता

महानुभाव!

जब तक बाह्य शुद्धि नहीं होती, तब परिणाम विशुद्धि नहीं होती है, और नीतिकारों ने कहा है-

भाव विशुद्व हुये बिना व्यर्थ त्याग वैराग्य।
मान करो मत त्याग का, करो मान का त्याग।।

यदि भावों की शुद्धि नहीं है तो त्याग करना, वैराग्य धारण करना वह सार्थक नहीं व्यर्थ है। बाह्य वैरागी का हो और अन्दर में राग द्वेष की कीचड़ भडभड़ा रही हो, तो बाहर का वह बगुला का भेष कल्याण नहीं करा सकता। और यदि आपने जीवन में कोई त्याग किय हो तो उसका अहंकार मत करो अपितु उस अहंकार का त्याग करो।

महानुभाव! भाव विशुद्धि बहुत आवश्यक हे। भावक विशुद्धि का आधार है आहार। जैसा आहार देता है वैसा व्यवहार और आचरण होता हे। हमारे गुरु महाराज पूज्य आचार्य श्री विद्यनंद जी महाराज एक श्लोक सुनाते हैं।

गज तुरग सहस्रं, गोकुल भूमिदानं।
कनक रजत पात्रं, मेदनीयं सागरान्तं।।
उभय कुल पवित्रं, कोटि कन्यप्रदानं।
नह भवतु तुल्यं अन्नदानं समानं।।

महाराज!

हजारों हाथी, घोड़े, गायों का दान दे दें, सागर पर्यनत पृथ्वी का दान देदो, सोने चांदी के बर्तनों का दान देदो, इतना ही नहीं सुमेय पर्वत के बराबर सोने चांदी का दान देदो, व दोनों कुलों को पवित्र करने वाली करोड़ों कन्याओं का दान देदो, फिर भी ये सभी दान मुट्ठीभर अन्नदान की तुल्यता को प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् अन्नदान के बराबर इन सबका फल नहीं होता। नीतिकार भी कहते हैं-

अन्नदानं परमदानम्

''अन्न दान परम दान है।''

अन्नदान किसको दिया जा रहा है?--

यदि आपने एक ग्रास आहार उसको दिया है जो अर्न्तमूर्हुत के बाद केवली बनने वाला है, तो उसने जो पुण्य कमाया है, उस पुण्य का १ प्रतिशत भाग उस दाता को मिलेगा। इसका अर्थ ये है जो केवली बनने वाला है उसे आपने दान

दिया है तो दान के देने वाला है वह भी नियम से निकट भविष्य में केवली बनेगा ही बनेगा। तीर्थंकर भगवान को प्रथम आहार देने वाला दाता लगभग उसी भव से मोक्ष जाता है (प्रथम दाता जो दीक्षा के बाद सर्वप्रथम आहार देता है)

महानुभाव!

अन्नदान का महत्व आचार्य अमिट गति ने बताया आहार देने वाला व्यक्ति यदि भावनाओं से आहार देता है तो ७ या ८ भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने कहा-

जो मुनि मुत्तवशेषं, भुंजदि सो भुजंदि णियदं।

संसार सार सोक्खं कमसो णित्तारवर सोक्खं।।

जो मुनियों के आहार किये गये, उस बचे हुये भोजन को ग्रहण करता है वह नियम से संसार के सारभूत भोगों को भोगता है। (कैसे सुख राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्द्धमण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, बल्भद्र चक्र, नारायण, और तीर्थंकर जैसे पद को प्राप्त करता है, स्वर्ग के सभी उत्तम पदों को भोग सकता है।) और क्रम से वह मोक्ष को प्राप्त करता ही करता है इसमें कोई शंका नहीं है।

दिगम्बर मुनि महाराज के हाथ पर जिसने जीवन में एक बार भी विशुद्धि पूर्वक, नधा भक्ति से दाता के सात गुणें से सहित होकर, दाता के पांच आभूषणों से सहित एक ग्रास आहार भी दिया है तो वह व्यक्ति नियम से नरक में नहीं जायेगा, तिर्यंच गति में नहीं जायेगा। वह देव गति में जायेगा।

महानुभाव!

दिगम्बर साधु को आहार दान देने का महत्व जिनागम में विशद रूप से स्पष्ट प्रमाण रूप से किया गया है, यदि मिथ्यादृष्टि अवस्था में भी दिगम्बर साधु को आहार दिया है तो उस आहार दान के प्रभाव से वे जीव उत्तम भोगभूमि में गये। यदि किसी तिर्यंच ने भी उस आहार दान की अनुमोदना कर ली तो वह तिर्यंच भी उत्तम भोगभूमि में गये। वहां से नियम से देवगति में ही जाता है।

महानुभाव!

आहार दान के संबंध में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने तो रयणसार में बहुत कुछ लिखा ही है, इसके साथ साथ आचार्य समन्तभद्र स्वामी जी ने, आचार्य अमितगति, आचार्य वसुनंदी, आचार्य जयसेन, आचार्य जिनसेन, आचार्य रविषेण, आचार्य ने इतना विशद व्याख्यान दिया है यदि आपके सामने रख दिया जाये तो आप कहेंगे महाराज मैं संसार का सारा काम छोड़ता हूँ, आज से मैं प्रतिदिन आहार दान दिया करूंगा। यही वजह थी कि भरत चक्रवर्ती ने अपने

जीवन में आठ साल के बाद शायद बिना आहार दिये कभी आहार नहीं दिया।

एक दिन उनके महल के सामने से कोई मुनिमहाराज नहीं आये तो उनकी आंखों आंसूं बहने लेंगे। वह छः खण्ड का राजा भरत जिसके आधानी बत्तीस हजार मुकुटबद्धे राजा, जिसकी छियानवे हजार रानियां, नौ निधि, चौदह रत्नो का स्वामी जिसके पास १८ करोड घोडे, चौरासी लाख हाथी, जिसके पास इतना वैभव उसके आंखों से आंसू। सेनापति मंत्री सभी उनके आगे हाथ जोड़ने लगे, कहने लगे महाराज! क्या आपके शरीर में कष्ट है, व्याधि है, आपकी आंखों में आंसू। (वह छः खण्ड का राजा, ये मानिये वह अपनी प्रजा के लिये तो भगवान जैसा है) उनके भगवान की आंखों में आंसू। वे सब बोले महाराज आपकी आंखों में आंसू देखकर हमारी आंखों में भी आंसू आ गये।

चक्रवर्ती ने कहा न कोई व्याधि है, न कष्ट है एक ही बात है कि आज मेरा पुण्य इतना कमजोर कैसे पड़ गया? पाप का उदय कैसे आ गया? क्या सभी मुनिराज को आज सभी ने पड़गा लिया? क्या कोई मुनिराज यहां तक नहीं आ सके? चक्रवर्ती भरत बडें रुदन कंठ से कहते है मैं काहे का चक्रवर्ती मुझसे अच्छे तो वे लोग हैं जिन्होंने मुनिराज को आहार दिया।

महानुभाव!

धन्य हैं वे भरत चक्रवर्ती धन्य हैं उनका पुण्य। चक्रवर्ती भी व्यक्ति तभी बनता है जब वह अपने पुण्य को चक्रवर्ती व्याज की तरह से बढ़ाता है। महानुभाव! उसकी प्रवल भावना थी तभी सामने से दो ऋद्धिधारी साधु आकाश मार्ग से आये-

हे स्वामिन्! नमोस्तु!... नमोस्तु!.....नमोस्तु!

अब अत्र तिष्ठ तिष्ठ आहार जल शुद्ध है

उनका पड़गाहन किया अपने चौके में ले गये और शुद्धि के शुद्धि के साथ आहार दिया।

महानुभाव!

बहुत महिमा है इस आहार दान की। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने तो यहां तक कह दिया--

छितगतमेव घट बीजं छानं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।

फलते छाया भंवे अव कलमेव मिष्ट शरीर वृथां।।

संसारी प्राणियों के लिये यदि कोई उत्तम फल देने वाला है तो वह है, पूजा और आहार दान।

कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा आहार दान देने से परिणाम बहुत निर्मल होते हैं, आहार देते समय लगता है और दें, खूब दें।

लोगों की तृप्ति नहीं होती। आहार चीज ही है ऐसी जिससे तृप्ति नहीं होती। एक बात अवश्य है आहार दान में, ज्ञानोपासना में, भगवान की पूजा भक्तिस से माता पिता की सेवा में इन चारों कार्यों से कभी तृप्त नहीं होना चाहिये। महानुभाव!

यह दान निःसन्देह सद्गति का कारण है, आचार्यों ने लिखा है- केवल दर्शन सद्गति गति कारण ही नहीं है अपितु यदि किसी से खोटी आयु का बंध कर लिया है तो आयु बंध छूटता नहीं है पर घट जाती है, दुर्गति का बंध कर लिया है तो दुर्गति सद्गति में बदल जाती है गति का संक्रमण हो सकता है, आयु का संक्रमण नहीं होता हे। तो नीतिकार लिखते हैं।--

दानं दुर्गति नाशाय- दान दुर्गति का नाश करता है।
शीलं सद्गति कारणं- शील सदगति को देने वाला होता है।
तपः कर्म विनाशाय- तप कर्म का नाश करने के लिये होता हे।
भावना भव नाशिनी- और भावनाओं के द्वारा भव का नाश हो जाता है।

यद्यपि पहले आगम की मूल परम्परा तो यह थी, कि आहार की व्यवस्था व्यक्ति अपने घर में ही, अपनी रसोई में ही आहार देता था और देना चाहिये। मार्ग आगम का यही है। आहार देने वाला व्यक्ति वही होता है जिसने अपने घर पर चौका लगाया हो। आगम में भी लिखा रहता है राजा रानी ने आहार दिये, चन्दनवाला ने अकेल महाराज को आहाद दिये पूरे नगर के लोग देखते रहे। राजा श्रेयांस रानी सोमप्रभ ने आहार दिये। तो जिसके घर में आहार हुआ वह आहार देने का अधिकारी है, शेष लोग कम पुण्यात्मा हैं जिनके यहां साधु नहीं पड़ेंगे।

तो महानुभाव!

यदि साधु की आहार व्यवस्था घर-घर नहीं रहती तो यह अपवाद है यदि अपवाद मार्ग में भी दूसरों के यहां आहार देने जाते हैं तो इसमें भी यह होना चाहिये कि वह अपवाद कम से कम संवाद पूर्वक हो। अपवाद में भी विवाद नहीं हो। बडें प्रेम से एक एक करके आहार दो, जिससे सभी की तृप्ति हो सके। आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी जी ने त्रिलोकसार की ८२४वीं गाथा में लिखा है-

दुभाव अशुभ सूदक फुव्ववहि जाय
संकरादीणं.....

बाते कहीं! यदि कोई व्यक्ति दुर्भावना से आहार देता है, यदि कोई व्यक्ति अशुभ आहार देता है। (अशुभ से आशय शरीर में कोई घाव है, खून निकल रहा है, आदि।) सूतक पातक में कोई आहार देता है। पुण्यवती स्त्री (अशुद्धि का समय) आहार दे दे, और वह व्यक्ति जिसका जन्म वर्ण संकर से हुआ है (न मां का पता है और न पिता का) ऐसा व्यक्ति आहार देता है तो वह

कुभोग भूमि में जाता हे। तिर्यंच होता है, कुमानुष.....
तो महानुभाव!

आहार दान देना भी आचार्यों ने कहा बहुत बड़ा विज्ञान है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा कि मुनि महाराज की प्रकृति को देखकर आहार देना चाहिये। वात पित्त, कफ ये प्रकृति होती है, कौन सा मौसम है शीत है कि उष्ण, मुनिमहाराज कैसे है बाल, वृद्ध या युवा इन सबको देकर आहार देने से निःसंदेह समीचीन पुण्य के भागीदार बन सकते हैं। तो महानुभाव कहने का आशय बस इतना है कि आचार्य नेमिचन्द्र की जो गाथा थी-

हम शुद्धि से आहार दें, वस्त्र की शुद्धि तन की शुद्धि, द्रव्य की शुद्धि, मन की शुद्धि से आहार देना चाहिये। यदि अशुद्धि से भी आहार दिया दिया तो मुनिमहाराज को पाप नहीं लगेगा, वे तुम्हारी रसोई देखने नहीं गये थे, वे तो तुम्हारे विश्वास पर विश्वास करते हैं, तुमने शुद्धि बोली, तुमने आहार दे दिया और उनने ले लिया। किन्तु तुमने यदि अशुद्धि की है तो

चौबे जी छब्बे जी बनने गये थे धेबी जी रह गये।

महानुभाव कहने का आशय यह है कि हमें शुद्धि पूर्वक आहार देना चाहिये। शुद्धि का ध्यान देखने वाले तथा देने वाले दोनों को रखना चाहिये। और जो भी आपके पर्व आयें आहे रक्षाबन्धन पर्व हो चाहे अक्षय तृतीया। ये दो र्व विशेष पर्व हैं जिनमें दिगम्बर साधु को आहार देकर के या त्यागव्रती को भोजन कराकर के ही भोजन करना चाहिये। अन्य दिन तो इतने महत्वपूर्ण नहीं गितने वर्ष में रक्षाबंधन और जिनशासन की परम्परा रही है। इन सभी द्भावनाओं के साथ में अपनी वाणी को विराम देता हूं।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी जी का व्यक्तित्व

महानुभाव!

जब तक दृष्टि परिमार्जित नहीं होती, जब तक आत्म प्रदेशों में सम्यक्ज्ञान उत्पन्न नहीं होता तब तक बाहर के समस्त क्रिया कलाप, बाहर के समस्त औपचारिक अनुष्ठान वह सम्पूर्ण सफलता को प्राप्त नहीं हो सकते। आचार्य पूज्यपाद स्वामी जी ने इष्टोपदेश में लिखा-

मोहनं समृतं ज्ञानम् स्तभाव लभते नहिं

पदाक्षिणाम् यथा

संसारी प्राणी का ज्ञान मोह के आवरण से ढ़का हुआ है, इसलिये उसे अपने स्वभाव का भान नहीं हो पा रहा। समझाने वाला समझा रहा है किन्तु न समझने वाला नहीं समझ रहा है। समझाने वाला अपना पूरा प्रयास करता है कि किस प्रकार में इसे इसकी आत्मा से साक्षात्कार करा दूं। संसार शरीर भोगों का सही स्वरूप बता दूं। ये अपनी आत्मा के वैभव को प्राप्त कर ले, यह चंद चांदी के टुकड़ों में बहकर धर्म को न भूले, यह अपने कर्तव्य को न भूले, किन्तु व्यक्ति अपने मोह के आवेश में आकर के उसे लगता है येन केन प्रकारेण चाहे वह छः घण्टे की बजाय दो घंटे ही सोये, न्याय से अन्याय से, सम्पत्ती का अम्बार लगाना है। अपनी पत्नी पुत्र को संतुष्ट करना है, उनकी संतुष्टि में ही मेरी संतुष्टी है। किन्तु यह एक मिथ्या धारणा है, इस मिथ्या धारणा को तोड़ना पड़ेगा, इस भ्रम को छोड़ा पडेगा, इस भ्रान्ति से मुक्त हो पडेगा, तब जाके कहीं तुम सत्य से साक्षात्कार कर सकोगे।

ऐसा कभी नहीं हुआ कि अंधकार से मित्रता करके, प्रकाश की याचना करने से भी प्रकाश मिलता हो। अंधकार को पकड़कर के उसे छोड़ाना ही न चाहो और प्रकाश को बुलाना चाहो, तो आ नहीं सकेगा। जीवन की अज्ञानता को थोड़ी देर के लिये छोड़कर देखो तो सही। श्मशान में वैराग्य आपके जीवन में जब होता है तो किसी की मृत्यु के समय जब जलाने के लिये जाते हैं तो क्षणभर के लिये। जब चर्चा होती है तो कहते हो कि संसार का कोई भरोसा नहीं, कब क्या हो जायेगा। और वहां से आये, स्नान किया, कपड़े बदले और दुकान गये तो सब भूल गये। यहां से उधार मंगाना है, वहां माल भेजना है, राग द्वेष की चर्चा वह ज्यों की ज्यों प्रराम्भ हो जाती है और पुनः आत्मा से दृष्टि मुड़ जाती है। यदि आपकी दृष्टि समीचीन रूप से अर्न्तमूर्हुत के लिये भी बनी रहे तो एक बार आत्मा को झकझोर

देती है। जब भी व्यक्ति को सम्यक्त्व होता है तो उसकी आंखों से आंसू बहने लगते हैं, जिसकी आंखों से भगवान के सामने, गुरु के सामने, जिनवाणी के सामने आत्मा की साक्षी में आंसू कभी नहीं बहे तो ऐसा व्यक्ति कभी सम्यक्दृष्टि बन नहीं सकता।

चाहे वह भगवान महावीर स्वामी का जीव, जब वह सिंह की पर्याय में था उसने जब सम्यक्त्व को प्राप्त किया था तो उसकी आंखों से भी आंसू बहने लगे; चाहे वह सिंहनी का जीव जिसने अपने बेटे सुकौशल पर उपसर्ग किया था उसे जब संबोधन प्राप्त हुआ तब उसकी भी आंखों से आंसू बहने लगे। चाहे वह श्यालिनी का जीव जब सुकुमाल पर उपसर्ग करने वाला था, जब सम्यक्त्व प्राप्त हुआ तो आंखों से आंसू वहे चाहे वह कमठ का जीव हो जिसने भवान पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किया, जब सम्यक्त्व प्राप्त किया तो आंखों से आंसू बहने लगे थे, चाहे वह राजा श्रेणिक का जीव जिसने यशोधर मुनि पर उपसर्ग किया था, बाद में संबोधन प्राप्त उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

महानुभाव!

जब तक आंखों से आंसू नहीं बहते तब तक मिथ्यात्व का मल दूर नहीं होता। दृष्टि निर्मल और सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो सकती, इसलिये बहुत आवश्यक है कि हम अपनी आंख निर्मल बनायें। आंख जिसकी निर्मल हो जाती है उसे सब निर्मल दिखाई देता है।जिसकी आंखें सम्यक होती है, उसे समस्त दृश्य सम्यक दिखाई देते हैं। जब तक आंखें ही मिथ्या हो तब तक वस्तु को भले ही जिन्दगी भर मिथ्या कहते रहो। वस्तु चाहे जैसी है वैसी हो हम वस्तु को दोष न दें, अपनी आंखों को दोष दें। वस्तु चाहे काली दिखाई दे रही हो, एक बार अवश्य देख लें कि हमारी आंखों पर कहीं काला चश्मा तो नहीं है। यदि आपने देख लिया और आपने मान लिया कि हमारी आंखों पर कोई चश्मा नहीं है तो मान लेना वस्तु का स्वरूप स्वभाव वैसा ही है। यदि आपने अपने चश्मा नहीं उतारा, चश्मे को लगाये रखा और कहा जो वस्तु काली दिखाई दे रही है, उसे सफेद करके ही रहुंगा और उसे धोने में लग जाओ, वह कभी सफेद नहीं हो सकेगी।

संसार का प्राणी अपना चश्मा उतारे बिना ही संसार की पसमस्त वस्तुओं को उसी कलर में करना चाह रहा है जो उसका त्मंस ब्वसवनत है। किन्तु ऐसा कभी कर नहीं सका। न कर सकेगा। उसे सबसे पहले आवश्यक है किी आंखों पर से चश्मा उतार कर एक किनारे पर रख दें। जब तक आंखों का चश्मा उतार करके नहीं रखेगा, दीवार भले ही सफेद है, उसे भले ही काले चश्मे में काली दिखाई दे रही है, वह बार बार उस दीवार पर सफेद पेन्ट करता रहे, जिन्दगी भर

करता रहे दीवार उसे कभी सफेद दिखाई देगी ही नहीं। जब तक कि वह आंखों का चश्मा न उतारे।

महानुभाव!

हमें भी चश्मा को उतारना अत्यंत आवश्यक है। चश्मा कैसे उतरेगा वीतरागी जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से, जिनवाणी के दो शब्दों का रसपान करने से, सन्गुरुओं के चरणों में बैठकर के उनकी अमृतमयी दिव्य वाणी सुनने से, उनकी सेवा, वैयावृत्ती करने से चश्मा उतर सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं है चश्मा को उतारने का, हमारा चश्मा हमें ही उतारना है कोई और हमारा चश्मा उतार नहीं सकता।

माना कि आपने सफेद चश्मा लगा रखा है वह भी खतरनाक है कहो कि महाराज जी अब तो कोई बात नहीं है सफेद चश्मा लगा रखा है। उस सफेद चश्मे में भी तुम्हें वह कोयला सफेद दिखाई देगा, आपको कोयल, कौआ, सब सफेद दिखाई देगा। जीवन में बड़ा संघर्ष हो जायेगा, बड़ी विडम्बना हो जायेगी, जो काला है वह सफेद दिखाई देने लगेगा। आप कहोगे कौन कहता है कोयला काला होता है, तवे की कालोंच काली होती है, सफेद होती है मेरी आंखों से देखो। अब उसकी धारणा को कैसे बदलोगे--

एक तालाब में एक मछली दूसरी मछली से कहती है तू जानती है, मनुष्य के बारे में, तूने कभी देखा है, सुना है, वह बोली जानती हूं, उसके पास दो हाथ होते हैं, दो पैर होते हैं, एक सिर होता है। दूसरी तुनक के बोली उसके पहले बाल होते हैं, फिर सिर होता है, फिर माथा होता है और ऊपर चढ़ो दो आंख होती हैं, फिर नाक होती है, फि मुंह होता है सबसे ऊपर उसके पैर होते हैं मनुष्य ऐसा होता है। दूसरी मछली बोली मनुष्य ऐसा तो नहीं होता है। से मूर्ख तू जानती नहीं है देख सामने तालाव के पास मनुष्य खड़ा है (तालाव में उसकी परछाईं पड़ रही थी) तो उसका सिर यहां और पैर वहां दखिाई दे रहे थे। अब उस मछली को कौन समझाये, दोनों में बहस हो रही है दोनों लड़ रही हैं, झगड़ रही हैं। बाद में उसने कहा दीदी एक काम करो हम थोड़ा बाहर चलकर के देखें तो कैसा रहे नहीं मैं यहीं रह्रुगी मैं अपनी बात को नहीं छोडुंगी, जब तुम अपनी बात को, अपने स्थान को नहीं छोडेगी तो तुम्हें कौन समझ सकता किन्तु फिर भी वह मछली तो उसकी बात को मानकर बाहर निकल गयी, उसका मिथ्यात्व, उसका भ्रम उसकी अज्ञानता तो छूट गयी।

मैं सोचता हूं कहीं आप भी इस तालाब में जी रहे हो, तालाब के बाहर निकल करके आयें। जो मेढ़क कुयें में रहता है, वह अपना संसार के बराबर जानता है। उसके बाहर निकलकर देखने की आवश्यकता है। संसार क्या है?

कभी आंख बंद करके, अनादि काल पहले से ाज तक आज से लेकर अनंत काल बाद तक का संसार पिच्चर की तरह से देखने लग जाओ, तो तुम्हें लगेगा मैं संसार में हूं कहां तिनके के बाराबर। एक बहती हुयी नदी है उसमें अनंती बूंदे पानी की बह गयी उस एक बूंद का क्या असतित्व। ऐसे ही मैं आया और चला जाऊंगा, किन्तु यदि मैंने अपना जीवन सार्थक करना है तो उसका एक ही उपाय है मैं धर्मध्यान में लग जाऊं। किन्तु .....

महानुभाव!

यह जीवन में तभी संभव होता है, जब मैं अपने मिथ्यात्व के परदे को हटा दूं। यह तभी संभव है जब मैं अपनी अज्ञानता की खोज में से निकल कर के बाहर आ जाऊं, जब में पूर्वाग्रह और मिथ्याधारण को छोड़ने के लिये तैयार हो जाऊं, अन्यथा वह संभव नहीं है, महानुभाव! सुख आपको यहां मिल सकता है, अभी मिल सकता है, इसी काल में मिल सकता है इसी क्षण मिल सकता है, किन्तु उसके लिये बात यह है कि सुख का आपको अभी ग्रहण करना पडेगा, दुख के कारणों को छोड़ना पडेगा।

एक कौआ उड़ता हुआ चला जा रहा था, सामने पेड पर बैठी हुयी कोयल ने उसे टोका, और कहा कौआ मामा आप कहां जा रहे हो? उसने कहा भांजी में दूसरे देश जा रहा हूं। यहां के लोग तो मुझे जानते नहीं पहचानते नहीं, मेरी इतनी सुंदर मधुर वाणी है फिर भी लोग उसे सुनकर पत्थर फेंकते हैं। ये समझते ही नहीं, मैं उस देश में जाऊंगा जहां मेरी वाणी को समझने वाले लोग हों। कोयल बोली मामा मैं आपसे एक बात कहूं आपने मेरा बहुत उपकार किया है पाल पोस कर बड़ा किया है। मेरी मां ने तो मुझे बस जन्म दिया है। (क्योंकि कोयल का जन्म तो कोयल देती है किन्तु सेने का काम कौआ करता है, कोए के यहां कोयल के बच्चे बड़े होते हें पुनः फिर उड़कर के कोयल के पास चले जाते हैं)

मैं आपसे एक बात कहूं आप किसी भी देश में चले जाओ, लोग वहां भी आपको पत्थर फेकेंगे, तुम्हारी आवाज को सुनेंगे नहीं, कहीं भी किसी भी देश में चले जाना। तुमसे मेरी यही राय है कि तुम देश को मत बदलो, कहां जाते हो विदेश में, वहां दुख उठाओगे, किन्तु वह कौआ नहीं माना, चला गया। पुनः समझाया मामा अगर बदलना ही चाहते हो तो केवल एक बार अपनी वाणी को अपने स्वर को बदल लो, तो तुम्हें देश बदलने की आवश्यकता नहीं हैं।

महानुभाव!

कहने का आशय यही है कि आज बहुत से लोग, अपना देश बदल रहे हैं, भेष बदल रहे हैं, कोई अपना नाम बदल रहा है, कोई दाम कोई काम बदल रहा है, सब कुछ बदलने का क्रम चल रहा है। कुछ परिणाम बदल लीजिये तो

आपका परिणाम बदल जायेगा। विचारों को बदलो तो निःसंदेह आपके जीवन में बदलाव हा जायेगा। हमने अभी तक दुनियां को बदलने का दुःसाहस किया है पर अपनी आत्मा को बदलने का पुरुषार्थ नहीं कि।

तो महानुभाव! जीवन में बदलाव तभी आता है जब दृष्टि बदल जाये, दृष्टि न बदले तो पुनः सृष्टि हुयी दिखायी नहीं देगी। सृष्टि को बदला नहीं जा सकता, दृष्टि को बदला जा सकता है।

एक बार गधों ने हड़ताल कर दी। गधा तो गधा है।

गधा कौन- जिसकी धारणा गलत है वह गध।

गधी कौन- जिसकी बुद्धि गलत है वह गधी।

गधे कौन- जिसका ध्येय गलत है वह गधे।

और हड़ताल वही करता है जिसकी धारणा गलत है। सही धारणा वाला जानता है कि जितना करूंगा उतना ही पाऊँगा। जिस व्यक्ति के पास इतनी बुद्धि है, जितना मेरा पुण्य है, कोई छीन नहीं सकता, में करूंगा वह मुझे मिलेगा ही मिलेगा। किन्तु जो व्यक्ति मेहनत से ज्यादा धन चाहता है उसे धन मिलता नहीं।

तो गधों ने हड़ताल कर दी, खाना पीना बंद। कुम्हार के लिये मुश्किल पड़ गयी कि क्या करे? मिट्टी लाना है, उन्हें खोदकर के, घडे भी बनाने हैं, सब काम करना है, किन्तु गधों ने हड़ताल कर दी, कैसे समझाये? कैसे मनायें? एक ही बात सभी गधे कहें गाय को हरी घा मिलती है, घोड़ों को हरी घास मिलती है, सबको मिलती है, हमं हरी घास क्यों नहीं मिलती? हम भी हरी घास खायेंगे, अन्यथा आज से काम पर नहीं आयेंगे। कुमहार ने सोचा इसकी कैसे पूर्ति की जाये? इतने गधों के लिये हरी घास कहं से आये? बहुत मुस्किल में पड़ गया। गधों को हरी घास कहां से मिल जाये? गधों का भाग्य तो सूखे भूसे का भी नहीं है हरी घास मांगे। कैसे काम चले, वह बड़ा परेशान हो गया वह कुम्हार।

संयोगवशात- किसी मुनिराज के पास पहुंच गया। बोला मेरी समस्या का समधान कर दो, आप सब की समस्या समाधान करते हो।

क्या समस्या है- गधों ने हड़ताल कर दी, मेरा काम बंद पड़ा है, क्या करूं? वे कहते हैं हरी घास लाओ। कहां से लाऊं हरी घास। हरी घास तो मिलती है नहीं, और गधे तो गधे ठहरे, अगर किसी खेत में छोड़ भी दिया जाये तो खायेंगे भी नहीं, खायेंगे तो जड़ को उखाड करके खायेंगे, जिससे दुबारा घास भी न उग पाये, और वे खायेंगे भी तो खायेंगे कम बिगाडेंगे ज्यादा।

फिर महाराज ने कहा चिंता मन कर वे गधे हैं घोडे नहीं, तू एक काम कर हरी पन्नी ले आ, और प्लास्टिक के कवर लेकर के पन्नी चिपकाकर के

चश्मा बना लें, और वे चश्में गधों की आंखों पर लगा दे। और उनके सामने पहले सूखी घास का ढेर लगवा दे। और गधों को चश्मा लगाके छोड़ देना, वे उस सूखी घास को बडे चाव से खायेंगे। उसने ऐसा ही किया उसने सभी गधों की आंखों पर हरे चश्मे लगा दिये। सभी गधे बहुत खुश हो गये और आपस में कहने लगे देखो, हमारी मंग की पूर्ती हुयी। यदि हम इस कुम्हार की बात मान लेते तो वास्तव में गधे बन जाते हैं। वे गधे, बड़े खुश संतुष्ट उन्हें बड़ा आनंद आ रहा है कि वे हरी घास खा रहे हैं।

महानुभाव!

कहीं ऐसा तो नहीं कि वह हरा चश्मा तुम्हारी आंखों पर बंधा हो, वह विषय भोगों की सूखी घास तुम भी चर रहे हो, लग रहा हो कि बड़ा आनंद आ रहा है, कहीं चंद चांदी के टुकडे देखकर कहते हो कि वाह मैं बड़ा सुखी हो गया, कहीं तुम ऐसे अपनी आत्मा को तो नहीं ठग रहे, कहीं संसार के विषय भोग तुम्हें तो नहीं ठग रहे हैं।

तो महानुभाव! दूसरे को तो गधा कहना है बहुत सरल है दूसरे को तो मूर्ख कहना, अज्ञानी कहना तो सरल है। एक बार अपनी आत्मा से कहकर तो देखो, एक अपनी आत्मा को जानकर तो देखो। आचार्य महोदय कह रहे हैं कि जब तक मोहनीय कर्म का परदा नहीं हटेगा तब तक तुम्हें सम्यक दिखाई नहीं देगा।

असनं मे वसनं मे, जाया मे बन्धवर्गो में
मेम इति कुर्ताणं कालवृको हन्ति पुरुषायं

असन में- यह मेरा भोजन। वसन में- यह मेरे वस्त्र। जाया में- यह मेरी स्त्री बन्धुवर्गों में- ये मेरा बन्धुवर्ग आदि। मेमे इति कुर्वाणं यह मेरा मेरा।

किन्तु मृत्यु के समय थ्या है तेरा सब कुछ छोड़ के जायेगा। काल वृको काल रूपी भेड़िया, हन्ति पुरुषायं- पुरुष रूप बकरे के गले को पकड़ लेता है मार देता है।

तो महानुभाव!

जब तक काल चक्र पुरुष रूपी बकरे के गले नहीं पकडे तब तक सत्य का बोध कर लेना चाहिये। महानुभाव जो सत्य का बोध कर लेता है उन्हें शुभचन्द्र स्वामी कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति क्या कहता है-

कस्यापत्यं पिता कस्य, कस्यां मा व सहोदरा।
इव एक मेव श्वताम्बोहाऊ, जीवो भ्रमित दुस्तरे।।

कस्या पत्यं- कौन किसका पुत्र।

पिता कस्य- कौन किसका पिता।

कस्या मां- कौर किसकी मां।
च कस्य सहोदरा- कौन किसका भाई।
इवएवमवाम्बांधऊ- संसार रूपी सागर में यह जीव डूब रहा है।
दुस्तरे- बड़ी कठिनाई से।
जीवो भ्रमित- जीव भ्रमण कर रहा है परंतु पार नहीं हो पा रहा है।
महानुभाव!

किनारा कैसे मिले? सद्गुरु रूपी कोई एक कुशल नाविक न मिले, कुशल तैराग न मिले तो वह जीव कैसे पार हो सकता है।
महानुभाव!

पार होने का एक ही उपास है कि आप लोग सद्गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करके आप अपनी आत्मा काकल्याण कर सकते हो।

''शांतिनाथ भगवान की जय''

मोह की प्रवलता
सुखी रहने के उपाय

धर्म स्नेही सत् श्रद्धालु- सभी पुण्यवान महानुभावो आप सभी लोग नरभव को सार्थक करने के लिये श्री जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट मुनिवरों द्वारा लिपिवद्व जिनवाणी की वाणी को किसी भी भाषा में समझे, किन्तु तत्व की बात समझ में आ जाये। और तत्व की बात किंचित भी समझ में आ जाती है तो उस व्यक्ति अपने जीवन को सुखी बनाने का सूत्र मिल जाता है। जैसे औषधि रोग में सही काम कर रही हो तो चिंता नहीं हैं, रोग कब ठीक होगा। औषधि ठीक है तो रोग ठीक ही होगाकिन्तु औषधि गलत हो तो? गलत औषधि रोग को तो ठीक करती ही नहीं अपतिु एक नया रोग पैदा कर देती है। जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदष्टि जिनवाणी का दिव्य उपदेश हमारे अंदर यदि कणभर भी पहुंच रहा है, तो हमारी आत्मा में पड़े हुये संस्कार कालानतर में हमें नियम से जिनेन्द्र भगवान बना देंगे। महानुभाव! जिन आचार्यों ने जिन भव्य जीवों के लिये अलग अलग प्रकार से अलग अलग दृष्टांत के माध्यम से समझाने का प्रयास किया उनका मूल इतना ही था कि व्यक्ति अपनी आत्मा से साक्षात्कार करे, व्यक्ति पांच पापों से बचे, व्यक्ति पंचेन्द्री के विषय से विरक्त हो, व्यक्ति चार कषायों के जाल से छूटे, व्यक्ति राग द्वेष की कीचड़ से मुक्त हो।
महानुभाव!

एक निर्जन जंगल जहां आस पास तक कोई मनुष्य दिखाई नहीं दे रहा, उस जंगल में बहुत तंग पहाड़ भी है, आस पास छोटी पहाड़ियां भी है, कई झरने और नदी भी है जिंगली जानवर तो दिखाई दे रहे हैं किन्तु कोई मनुष्य, शिकारी, भील आदि दिखाई नहीं दे रहा है। उस जंगल के मध्य में एक मुनिराज ध्यान से संलग्न है उन मुनिराज की तपस्या के दिव्य प्रभाव से जंगल का वातावरण धर्ममय बन रहा है, जंगली जानवर जो जन्मजात वैरी है वे भी अपने वैर भाव को छोड़कर शांतचित्त से मुनिराज के समीप में ऐसे बैठे हैं जैसे बालक अपनी मां के पास जाकर बैठ जाता है। इसलिये जंगल में कोई जानवर या मनुष्य दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि सभी शांतचित्त से मुनिराज के पास बैठे हैं। वनपाल के द्वारा वहां के नृपति को समाचार ज्ञात हुआ कि मेरे नगर के निकट उद्यान में परम तपस्वी योगीराज पधारे हैं, जो मेरा अत्यंत पुण्य का उदय है यह मेरा सौभाग्य है कि मैं उनके दर्शन करके उनकी दिव्य देशना का अमृतपान करूंगा। उनको देखने से

मेरा जीवन धन्य हो जायेगा। और उसने अपने नगर में डिंडोरी पिटवा दी, संदेशवाहक को अपने गले का हार उतार कर दे दिया, इनाम में संदेशवाहक पुरस्कार को प्राप्त कर आनंदित हुआ। राजा दलबल के साथ जंगल में पहुंच गया और उन मुनिराज के चरणों में निवेदन किया, स्तुति की भक्ति अर्चना की। मुनिराज ध्यान में संलग्न है, नेत्रबंध है, उनकी मूर्ति दिखायी दे रही है उनकी वह मौन मूर्ति मोक्षमार्ग का उपदेश दे रही है।

वह राजा उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि पाने के लिये बड़ा आकुल व्याकुल हो रहा है, कि मुनिराज के नेत्र खुले तो मेरे भी अंतरंग के नेत्र खुल जायेंगे। मुनिराज का ध्यान पूरा हुआ और नेत्र खुले। उन्हें देखकर राजा कृत्य-कृत्य हो गया, आंखों से पानी बहने लगा, इतना गदगद हो गया मुनिराज की मोहनीय छवि देखकर के उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि देखकर के उसने अपने आप को धन्य माना। किन्तु इतने से भी काम न चला दर्शन की भावना थी वह पूर्ण हुयी, कृपापूर्ण दृष्टि भी मिल गयी किन्तु अब भावना यह थी कि श्री मुख से दो शब्द सुनने को मिल जाये। मुनिराज उसे भव्य जानकर के धर्म का उपदेश देने लगे-

हे भव्य जीव! तेरी आत्मा शाश्वत है, तेरी आत्मा पर से पृथक है, तेरी आत्मा का स्वभाव शाश्वत सुख शांति को प्राप्त करना है, तू संसार में कर्म के आधीन होकर के जन्म मरण को प्राप्त हो रहा है, यदि अपनी आत्मा से साक्षात्कार कर ले तो संसार में भ्रमण नहीं करना पडेगा। सभी कर्मों में मोहनीय कर्म बड़ा बलवान है जो मोहनीय कर्म को जीत लेता है वह सभी कर्मों को जीत सकता है। इत्यादि प्रकार से मुनिराज उन्हें उपदेश दे रहे थे। उपदेश पूर्ण हुआ, राजा कृत्य कृत्य हो गया।

पुनः राजा ने कहा, आपने यह संदेश सत्यंत संक्षेप में सूत्र रूप में कहा मुझे थोड़ा विस्तार से समझा दीजिये।

आपने कहा पाप का कारण है, दुख है और ये जीव रागद्वेष करके बन्धन को प्राप्त होता है, यह जीव संसार में नाना प्रकार के दुखों को प्राप्त होता है, इसका मुख्य कारण क्या है? उन्होंने इतनी बातें पूछी, तो मुनिराज ने उसकी जिज्ञासा का समाधान करने के लिये उतने प्रकार का उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया--

तीन बाते हैं, अगर इन तीनों को त्याग दे तो सुखी हो जाये। पाप की बात पूछी महाराज ये पाप दुःक्ष का कारण है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ''दुःख कहलाते हैं। तो पाप दुख का कारण है, किन्तु ये पाप का भी मूल क्या है। पाप होते क्यों हैं? तो आप जानते हैं कि पाप का बाप कौन हैं लोभ। पाप की मां कौन है तृष्णा। लोभ बढ़ता है तृष्णा साथ देती है, वस्तु प्राप्त होने पर भी लोभ

बढ़ता है न प्राप्त होने पर भी लोभ रहता है और तृष्णा मिलने पर भी बढ़ती जाती है।

''जहां लाओ वहां लोभो लाहो लोहो बड़ई''

जहां लाभ होता है, तो लाभ से लोभ बढ़ता है। लाभ से लोभ की वृद्धि होती जाती है, तृष्णा बढ़ती जाती है लोभ और तृष्णा एक दूसरे के साथ है, दोनों दम्पत्ती हैं। तो

लोभ मूलानि पापानि- समस्त पापों का मूल लोभ है लोभ के कारण व्यक्ति परिग्रहण इकट्ठा करता है। परिग्रह एकत्र क्यों करता है? पंचेन्द्री के विषयों का सेवन करने के लिये। महानुभाव-

किसी ने यदि हिंसा की है तो उसे एक पाप लगेगा, हिंसा का। और झूठ बोला तो दो पाप लगे। एक तो झूठ बोल रहा है और दूसरा झूठ बोलकर दूसरे व्यक्ति का दिल दुखा रहा है। और चोरी की तो तीन पाप लगे। एक तो स्वयं चोरी करना, दूसरा अगर चोरी करेगा तो उसे छिपाने के लिये झूठ अवश्य बोलेगा और तीसरा जिसकी चोरी की उसे दुख पहुंचा। और वह कुशील सेवन भी करेगा तो चाप पाप लगेंगे। एक तो कुशील सेवन दूसरा किसी को बतायेगा नहीं अर्थात् झूठ बोलेगा, तीसरा कभी किसी के सामने सेवन नहीं करेगा, छिपकर करेगा तो चोरी और चौथा, विषयों के सेवन में पंचेन्द्र जीवों लगभग (एक करोड़) की हिंसा का पाप लगा। और परिग्रह को स्वयं करेगा तो पांचों पाप लगेंगे। एक तो परिग्रहण संचय किया, दूसरा परिग्रह का संचय क्यों किया जाता है। तीसरा चोरी भी करेगा कर्तव्य की चोरी, जो कार्य करना चाहिये वह नहीं कर रहा और जो नहीं करना चाहिये वह कर रहा है। और चौथा झूठ भी बोलेगा वचनों से नहीं तो मन से झूठ बोलेगा, तो हिंसा भी कर रहा है। परिग्रह में पांचों पाप हैं।

महानुभाव!

कहने का आशय यह है कि लोभ होता है तो परिग्रह आता है और परिग्रह आता है तो पांचों पाप होते हैं। लोभी व्यक्ति कभी धर्म नहीं कर सकता। उसका भाव सिर्फ लेने का होता है, वह भगवान के गुणों को प्रापत करने के लिये पूजा नहीं करता अपितु अपनी दुकान चलाने के लिये पूजा करता है। शुद्ध मन से पूजा नहीं करता। बनिया बुद्धि वाला व्यक्ति बिना सौदा के एक माला भी नहीं फेरता। वह पूछता है। माला से क्या होगा? पूजन, स्वाध्याय से क्या होगा? तो पहले उसे फल बताओ।

तो महानुभाव!

एक लोभी राजा की कहानी आपने सुनी होगी-

एक मैदास नाम का एक राजा था, सम्राट उसे धन की बहुत भूख थी।

तन का सुख कितैक है, तीन पाप कै सैर
मन की भूख इतक है, कि जंगलन चाहे सुमेर।

शरीर की भूख कितनी है, कितना खायेगा- पाव भर, आधा किलो, अथवा एक किलो किन्तु मन की भूख इतनी है कि सुमेरू पर्वत भी रत्नों का भरा हुआ हो, वह मुझे मिल जाये, मेरी सम्पत्ती भी मुझे मिल जाये, अड़ोसी-पड़ोसी, गांव की सबकी सम्पत्ती बस मुझे मिल जाये।

उस मैदास के मन में भी भावना हुयी कि मेरे पास भी बहुत सम्पत्ती हो, वैभव हो। अब कैसे वेभव प्राप्त हो तो उसने सोचा कि साधु महात्मा के पास जाओ तो उनके पास बहुत तंत्र मंत्र होते हैं, वे या चमत्कार दिखा दें। इसलिये उसने खोजबीन की कहीं कोई मुनिराज मिल जाये। उसने छानबीन की, उसे जंगल में एक मुनि महाराज मिले। बड़े तपस्वी महाराज तपस्या के कारण उनका शरीर कृश हो रहा था, वह उनके पास गया निवेदन किया मैं धर्म करना चाहता हूं, मैं धन प्राप्त करना चाहता हूं। उसने खूब सेवा की १२ साल तक सेवा की। मुनिराज ने कहा क्या वरदान मांगते हो- एक ही बात मांगता हूं कि जिस वस्तु को मैं छूऊं वह सोने की हो जाये। महाराज ने कहा बेटा एक बार सोच लो, उसने कहा मैंने सोच लिया महाराज ने पुनः कहा बेटा सोच लो किन्तु वह मैदास बोला कि मैं बहुत सोच लिया, आपको यदि देना है तो आप मुझे ये ही वरदान दे दो।

महाराज ने कहा ठीक है तथास्तु। वह घर आया उसने जैसे ही अपना महल छूआ वह सोने का हो गया, वर्तन छूये सब सोने का होता चला गया। उसके घर में उसकी एक छोटी बेटी थी, जैसे ही उसे छूआ तो वह भी सोने की हो गयी। दिन भर का हारा थका भोजन के लिये बैठे। जिसे छूये सोना हो जाये परेशान हो गया। रात भर रोता रहा दुखी हो गया। और सोचने लगा इसीलिये महाराज ने कहा था, कि बेटा एक बार सोच ले। वह पुनः दूसरे दिन महाराज के पास गया। महाराज ने कहा बेटा और कुछ चाहिये? सोने में कोई कमी रह गयी क्या? वह बोला महाराज सोने को आग लगाईये।

''वा सोने का जारिये, जीसे छीज प्रान''

जिस सोने के लिये मेरे प्राण ही चले जायेंगे, मेरी कन्या सोने की बनकर रह गयी, ऐसे स्वर्ण का क्या फायदा, कुछ खाऊं-पीऊं तो सब सोने का हो रहा है, अब तो आप मुझे ऐसा वरदान दे दो, जैसा कि मैं पहले था ठीक था। सुखी था। महाराज ने कहा अब कुछ नहीं वरदान तो दे दिया वह खूब रोया पीटा क्षमा याचना की, महाराज ने कहा ठीक है तथास्तु।

तो महानुभाव!

जो लोभी व्यक्ति होता है वह प्रायःकर सोचता है, बिना सब कुछ दिये

सब' मिल जाये। लोभ मूल है, जड़ है, व्यक्ति लोभ से छूट जाये तो पांचों पापों से छूट जाये।

रस मूलानि व्याध्या- व्याधि का मूल रस है। रस से कैसे कोई वस्तु अच्छी लगी खाते गये खाते गये इतना ही नहीं। कि जब भूख लगी तभी खाते चले गये। जैसे किसी व्यक्ति के मीठा बहुत अच्छा लगे, वह खूब खाये, कुछ दिन तक तो कुछ नहीं हुआ, परन्तु कभी चैकअप कराने गये तो पता लगा कि डायबिटीज है। जो व्यक्ति अपने खान पान पर नियंत्रण रखता है वह प्रायःकर स्वस्थ्य रहता है।

''कम खाओ, गम खाओ, और नम जाओ।''
कम खाओ तो हकीम के पास नहीं जाओगे,
गम खाओ तो हमीक के पास नहीं जाओगे,
नम जओगे तो जीवन में सुखी हो जाओगे।

जो व्यक्ति दबा दबा के खाता है, वह दवाखाने जाता है, जो कम खाता है, गम खाता है, नम जाता है, जीवन भर मुस्कुराता है।

एक ब्राह्मण पंडित जी कहीं निमंत्रण पर गये, एक दिन पहले से भूखे थे। तो भोजन करने के लिये बैठे, उन्होंने खूब जमकर भोजन किया जैसे ही भोजन करके उठा, तो यजमान ने कहा पंडित जी ये दस रसगुल्ले अगर आप खा लें तो मैं आपको १०० रु० दुंगा। पंडित जी बोले नहीं भाई बहुत भोजन कर लिया है। पंडित जी १०० रु० दूंगा पंडित जी थोड़ा हिले डुले जैसे तैसे दस रसगुल्ले खा लिये। अब जैसे ही वे चलने लगे तो फिर वह व्यक्ति बोला पंडित जी अगर आप ये पांच रसगुल्ले और खा लें, तो आपको ५०० रु० दुंगा, पंडित जी ने बहुत मना किया किन्तु ५०० रु० का लोभ छोड नहीं पाये और रसगुल्ला हाथ में लिया, बड़ी मुश्किल से पहले एक खाया। दो खाये, जैसे तैसे उन्होंने पांचों रसगुल्ले खा लिये। अब पंडित जी की हालत इतनी खराब कि वे सांकल पकड कर खडे हो गये, उन पर चला भी नहीं जाये। उस व्यक्ति ने पुनः पंतिड जी से कहा पंडित जी दो रसगुल्ले और खा लो तो मैं आपको १००० रु० दुंगा। पंडित जी बोले नहीं भाईया, अब बिल्कुल भी जबह नहीं है, परन्तु १०० रु० के लिये पुनः प्रयास करने लगे, एक रसगल्ला हाथ में लिया, मुंह में डाला, निगल ही नहीं पाये और खडे खडे गिर पड़े। उस व्यक्ति ने पंडित जी के घरवालों को बुलवाया, पंडित जी के बेटे आये, उन्हें अस्पताल ले गये। डाक्टर ने कहा कि कोई बीमारी तो दिखाई नहीं दे रही, पेट फूल रहाह है शायद कब्ज है, तो कहा ऐसा करो चार हाजमोला की गोली खालो, तो गैस पास हो जायेगी, तो पंडित जी झट से बोले डाक्टर साहब अगर पेट में इतनी जगह होती तो मैं रसगुल्ला नहीं खा लेता।

तो महानुभाव!

कहने का आशय यह है कि जो दबा दबा के खाते हैं व दवाखाने जाते हैं, और जो कम खाते हैं, गम खाते जिंदगी भर मुस्कुराते हैं। तो महानुभाव रस मूलानि व्याध्या रसासक्ति रोगों की जड़ है, बीज है।

तीसरी बात ''स्नेह मूलानि बन्धानि''

व्यक्ति लोहे की सांकल तो तोड़ सकता है किन्तु मोह की सांकल उसको बन्धन को तोड़ना बड़ा कठिन है। इसलिये यदि व्यक्ति को किसी से स्नेह है, तो व्यक्ति सामने हो तो भी उसकी याद आती है, दूर होने पर भी उसकी याद आती है। अतः मोह का बन्धन अदृश्य होता है, बाहर के बन्धन को तो तोड़ा जा सकता है किन्तु प्रेम का बंधन को तोड़ना बड़ा कठिन हे। एक छोटा सा कथानक आपको संक्षेप में सुनाने का प्रयास करते हैं--

महानुभाव!

बात उस समय की है जब महावीर भगवान केवली अवस्था को प्राप्त थे, जिस समय मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करता था, उसका प्रत्र अभय कुमार था। उसी समय समुद्रों के पार एक दूसरा राजा राज्य करता था। उस नगरी में राजगृही नगरी के कुछ व्यापारी व्यापार करने गये, वे वहां के राजा से मिले एवं उन्हें भेंट चढ़ाई। राजा का पुत्र जिसका नाम अद्री कुमार था। वह उनसे मिलकर बहुत उत्साहित हुआ, उसने पूछा तुम लोग मगध देश से आये हो वहां सब कैसा है? वहां की क्या विशेषता है? वहां कोई राजकुमार भी है क्या? उसका क्या नाम है? तो उन लोगों ने कहा वहां के राजकुमार का नाम अभय कुमार है। अद्रीकुमार ने कहा तुम लोग अभय कुमार से मेरा नमस्कार कहना और मेरी भेंट उनको दे देना। जैसे ही अद्री कुमार ने अभय कुमार का नाम सुना और कुछ ध्यान किया तो उसे ऐसा लगा कि अभय कुमार से उसका पूर्व का कोई संबंध है। और जैसे ही अभय कुमार को अद्रीकुमार का समाचार मिला एवं भेंट मिली, तो उसे भी जाति स्मरण हो गया और उसे प्रत्यक्ष ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह अद्रीकुमार और मैं अभयकुमार पूर्व जन्म में भाई भाई थे एक साथ ही रहते थे, एक साथ पुण्य क्रिया करते थे।

अब जब अद्रीकुमार वहां फंस गया है, वहां अपना कल्याण नहीं कर रहा है, तो मुझे इसे सम्यक्त्व की प्राप्ति करानी चाहिये। अब मैं इसके लिये क्या भेंट भेजूं। अभय कुमार ने मगध देश के व्यापारियों से कहा जब तुम लोग, वहां जाओं तो मुझ से मिलकर जाना। जब वे व्यापारी जाने लगे तो अभयकुमान ने उन्हें एक पेटी में, जिनेन्द्र भगवान की दिगम्बर मूर्ति रख दी एवं पत्र भी रख दिया

और कहा ये राजकुमार को दे देना और कहना कि वह इस पेटी को एकांत में खोलें। व्यापारीगण ने ऐसा ही होगा, ऐसी आज्ञा लेकर मगध देश पहुचे एवं राजा से मिले, पश्चात् राजकुमार को उनकी समस्त सामग्री जो अभय कुमार ने भिजवायी, दे दी एकांत में खोलने के लिये कह दिया।

अद्रीकुमार ने महल के किसी एकांत कक्ष में जाकर दरवाजा बंद करके, प्रकाश में वह पेटी खोली, देखा कि जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा है। अद्रीकुमार को भी जाति स्मरण हो गया कि हम दोनों पूर्व में भाई भाई थे, साथ साथ मंदिर जाते, पूजन पाठ करते थे, अभय कुमार तो वहां पहुंच गया, मैं यहां जन्मा हूं। अब हम दोनों कैसे मिलेंगे। उसे वैराग्य हुआ। कि मुझे भी कल्याण करना है और वह पूजा पाठ में लग गया। लेकिन एक ही पुत्र होने के कारण वह राजा के चंगुल से निकल नहीं पा रहा था। जब राजा को यह भनक लगी कि उसका पुत्र धर्मात्मा होता जा रहा है, तो राजा को शंका हुई, कि कहीं वो दीक्षा न ले ले। इसके लिये राजा ने महलों में ही राजकुमार के रहने की व्यवस्था करवा दी। थोड़े दिन वाद राजकुमार ने कहा पिता जी मेरा मन बाहर घूमने का होता है, यदि आपको मुझ पर विश्वास न हो तो अपने कुछ सैनिक मेरे पीछे लगवा दो। मैं यहीं घोड़े पर सवार होकर घूमुंगा। राजा मान गया।

जब अद्रीकुमार घोड़ो पर घूमने जाता, तो सैनिकों को वहीं छोड़ जाता, और कहता मैं अभी घूमकर आता हूं, तुम लोग ठहरना। वह एक एक दो घंटे बाद लौटकर आता, इस प्रकार उसने सैनिकों का विश्वास पक्का कर लिया। उसने अपनी योजना के अनुसार ही मगध देश के व्यापारियों से पहले ही पूछकर तय कर लिया था कि वे मगध देश कब जायेंगे। तो व्यापारियों ने भी कहा कि हम लोग कल प्रातः ६ बजे मगध देश के लिये प्रस्थान करेंगे। अद्री कुमार ने प्रस्ताव स्वीकार करते हुये, अगले दिन उसी तरह सैनिकों को आने का आश्वासन देकर, घोड़ों पर सवार होकर समुद्र के किनारे जा पहुंचा। वहां भी जहाज चलने के लिये तैयार थे एवं व्यापारी बैठे थे। अद्रीकुमार जहाज में बैठा और भारत जा गया। मगध देश में तो मुनिराज थे नहीं और भारत आकर वह यह सोचने लगा कि मुनिराज कहां मिलेंगे? सबसे पहले भगवान महावीर के दर्शन करूंगा। और मुनिमहाराज से मिलुंगा। वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसे किनारे पर ही एक मुनिमहाराज की सभा दिखाई दी, उसने वहां जाकर उपदेश सुना, और उसे वैराग्य हो गया, उसने वहीं दीक्षा ले ली। वह दीक्षा लेकर विहार करने लगे। वे विहार करते करते किसी नगरी में जा पहुंचे, वहां नगरी के महल के पास

चैत्यालय था, वहां पर भगवान के दर्शन करके, पश्चात् अपनी सामायिक पूर्ण की। संयोग की बात थी कि उस राजमहल से चार पांच सखियां चैत्यालय में दर्शन करने आयीं, वहां सखियों में राजकुमारी भी थी। राजकुमार को मुनिमहाराज को देखा तो उसे जाति स्मरण हो गया कि ये पूर्वभव के पति हैं, वह कहने लगी कि ये तो मेरे पूर्वभव के पति हैं, वह कहने लगी कि इस भव में भी मैं इनहें ही अपना पति मानुंगी, अन्यथा मैं शादी नहीं करूंगी। अब बड़ा मुश्किल कि ये तो मुनिराज हैं, शादी कैसे करेंगे। सखियां जैसे तैसे राजकुमारी को महल में ले गयीं प्रातःकाल मुनिमहाराज वहां से विहार कर गये। वे तो उस बात को भूल गये, कि मैं किसी मंदिर में रुका वहां राजकुमारी आयीं, अब तक शादी भी हो गयी होगी।

संयोग की बात राजा भी उन मुनि महाराज को खोजते खोजते वहां तक आ पहुंचा और कहा कि मेरी पुत्री अविवाहित बैठी है, आपको उसके साथ शादी करनी है, मुनिमहाराज को पकड़ लिया। उन पर तो उपसर्ग जैसा हो गया, उनको कपड़ें पहना दिये और अन्त में मुनिराज के मन में भी राग का भाव आ गया, उनके पूर्वभव के संस्कार जागृज हो गये। और उनका विवाह राजकुमारी से हो गया। अब वे राजकुमार हो गये। किन्तु उनके मन में भाव थे मुझे कल्याण करना है। उस राजकुमार ने राजकुमारी से कह दिया मैं राज्य नहीं संभालुंगा, मैं जंगल में रहुंगा, वहीं काम करूंगा, तू भी मेरे साथ जंगल में काम करना। उसी से हम अपनी आजीविका चलायेंगे। मैंने तुमहारी तो शर्त पूरी कर दी। राजकुमारी ने कहा मुझे स्वीकार है, मुझे राज्य अवस्था नहीं चाहिये, मुझे आपका सहवास चाहिये। कुछ समय पश्चात् उनके एक बालक उत्पन्न हुआ, वे चरखा चलाते, सूत काटते और अपना जीवन यापन करते। वह बालक जब १२ वर्ष का हो गया तब अद्रीकुमार ने राजकुमारी से कहा तू अपना शेष जीवन इस बालक के सहारे यापन कर लेना, मैं दीक्षा लेकर अपना कल्याण करने जाता हूं। राजकुमार तो चुप रही लेकिन उसका बालक उठा और सूत की अडियों से राजकुमार के पैरों को १२ बार लपेट दिया, और उसका रास्ता रोक कर कहा पिता जी अब कैसे जाओगे? मैंने तो आपको बांध दिया।

अद्रीकुमार निमित्त ज्ञानी था, उसने समझ लिया कि वह १२ वर्ष तक दीक्षा नहीं ले सकता। वह १२ वर्ष पश्चात् दीक्षा लेने चला गया। और दीक्षा लेकर घोर तप किया, उन्हें अंतर में पश्चाताप भी था कि मैं मुनि बन भ्रष्ट हुआ। इसके लिये उन्होंने गहन तपस्या की। गर्मी में पर्वतों पर, सर्दियों में वृक्षों के पास, नदी के किनारे, ६-६ माह तक उपवास आदि अनेक तप किये, जिसके प्रभाव से उन्हें

अनेक रिद्धियां प्राप्त हो गयीं।

एक बार वह विहार कर रहे थे, तभी सामने से एक हाथी जो बहुत उच्छ्लंख हो रहा था, किसी के पकड़ में नहीं आ रहा था, जैसे ही मुनिराज की दृष्टि उस पर पड़ी वह शांत हो गया, राजा के सैनिकों ने उसे पकड़ कर बाध लिया, जब मुनिराज आहार चर्या से लौट रहे थे, तब उन्हें फिर वही हाथी दिखाई दिया, उन्होंने देखा कि हाथी की आंखों से अश्रुधारा वह रही है, उन्हें लगा कि मैंने हाथी को बंधन में डलवा दिया। उन्हें हाथी पर दया आ गयी। जैसे ही मुनिराज ने लोहे की सांकल को घूर कर देखा तो तपस्या के प्रभाव से वह लोहे की सांकल तड़-तड़-तड़ करके टूट गयी, वह हाथी स्वतंत्र हो गया, किन्तु उच्छ्लंख नहीं हुआ, उस हाथी को भी धार्मिक संस्कार जागृत हो गये, वह व्रती जैसा हो गया, राजा भी उसके खान पान का मर्यादा से पालन कराने लगा।

यह समाचार पूरे आर्यावृत में फैल गया, भरत देश, मगध देश में अभय कुमार के पास सब जगह चर्चा फैल गयी। सभी लोग दर्शन के लिये गये, राजा श्रेणिक आदि महाराज के पास जाकर स्तुति करने लगे कहने लगे कि धन्य हो महाराज! आपकी दृष्टि मात्र से ही लोहे की सांकले टूट गयीं।

मुनिराज ने कहा- भैया ये लोहे की सांकलों को तोड़ना तो सरल है किन्तु मैं मोह के कच्चे १२ धागे नहीं तोड़ पाया, मैं वही अद्रीकुमार हूं।

अतः महानुभाव!

''स्नेह मूलानि बन्धानि''

स्नेह, राग, मोह, बंधन का मूल है, जितना स्नेह लगा उतना ही व्यकित बंधा हुआ है, उसे कोई बांधता नहीं वह स्वयं बंध जाता है।

हमें ये तीन बातें अपने जीवन में ध्यान रखनी चाहिये, ये ही बंधन के कारण है त्रीणी व्यक्त्वा मुखी भवेत- इन तीनों का त्याग करके सुखी हो जाना चाहिये।

१:- लोभ पाप का मूल है।

२:- व्याधियों का मूल रसासक्ति है।

३:- स्नेह बंध का मूल है।

उन मुनिमहाराज ने जंगल में ये तीन बातें बताई बेटा यदि इन तीन बातों का त्याग कर दोगे तो सुखी हो जाओगे। ये बातें हम भी आपे कहते हैं कि इन तीनों बातों का त्याग कर दो सुखी हो जाओगे।

समवशरण

हे संसार के भव्य प्राणियो!

जिनेन्द्र भगवान की दिव्य हवीन चारों संध्या कालों में सर्वांग से निसृत होती है। प्रत्येक प्राणी उसे श्रवण करके अपनी आत्मा का कल्याण करता है। जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि अनक्षरी होती है। मागध जाति के देव उसे अक्षर में परिवर्तित कर देते हैं। प्रत्येक अन्तमूर्हुत में दिव्य ध्वनि में द्वादशांग का सार खिरता है, पूरा द्वादशांग निसृत होता है। गणधर परमेष्ठी उसे संग्रहीत करके भव्य जीवों को, उसके उपयोगी बना देते हैं, जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं।

जिनेन्द्र भगवान ने अपनी ऊँकार मय दिव्यध्वनि में क्या कहा है? द्वादशांग का सार क्या है?

हे भव्य जीव-

संसार में छः द्रव्य पाये जाते हैं। जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन छः द्रव्यों में जीव द्रव्य उत्तम है। सात प्रयोजनभूत तत्व पाये जाते हैं जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इन सात तत्वों में उत्तम तत्व जीव तत्व है। नवपदार्थों और पंचास्ति कार्यों में भी उत्तम जीव है। जीव ज्ञान और दर्शनलक्षण वाला है। उसमें चेतना पायी जाती है। जिसमें चेतना नहीं पायी जाती है उसे अजीव कहते हैं। अजीव के पांच भेद हैं पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। पुद्गल उसे कहते हैं जिसमें पूरण और गलन की शक्ति होती है, जिसे आंखों से देखा जा सकता है, जो नष्ट भी होता है और उत्पन्न भी होता है, जो कि आंखों से दिखायी दे रहा है, वह प्रत्येक दिखायी देने वाला पदार्थ पुद्गल है। धर्म द्रव्य वह होता है जिसके माध्यम से जीव और पुद्गल चलने में सहकारी होते हैं। ये लोकाकाश में विद्यमान हैं, ऐसा आकाश का कोई प्रदेश नहीं जहां धर्म द्रव्य नहीं हो। अधर्म द्रव्य उसे कहते हें जो ठहरते हुये जीव एवं पुद्गल को ठहराने में सहकारी होता है। ये भी लोकाकाश से समग्र में व्याप्त है। आकाश एक अखण्ड द्रव्य है अनंत प्रदेशी होती है, इसका कोई अंत नहीं होता, ये जीवादि, पदार्थों को ठहरने के लिये स्थान देता है। आकाश के जिसने स्थान में जीवादि द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं, उसके बाहर के आकाश को अलोकाकाश कहते हैं, जो कि अनंत होता है काल द्रव्य वह है जो प्रत्येक द्रव्य के परिणमन के सहकारी होता है।

महानुभाव!

जीव द्रव्य का कल्याण इन सात तत्वों को जानने पर, मानने पर ही संभव होता है। तत्व वस्तु के स्वभाव को कहते हैं, जिस द्रव्य का जैसा स्वभाव है,

उसे वैसा ही मान लेना, यही सम्यक्त्व का लक्षण है। जीव का लक्षण जानना देखना है, जीव का गुण संसार सागर से पार होकर के अपने अनंत गुणों को प्रापत कर लेना है। यूं तो प्रत्येक द्रव्य में सामान्य और विशेष गुण पाये जाते हैं, फिर भी जीव के गुण अलग हैं। चेतना, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य इत्यादि। आत्मा के गुण हैं। पुद्गल के गुण अलग हैं, पुद्गल कभी जीव नहीं हो सकता। जीव कभी पुद्गल नहीं हो सकता। किनतु उस जीव ने तो राग द्वेष आदि करके संसार में परिभ्रमण किया है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योग के माध्यम से कर्मों के आने के द्वार को आश्रव कहते हें। आत्म प्रदेशों का और कार्मण वर्गणाओं का एकमेक हो जाना ये बंध कहलाता है। बंध चार प्रकार का होता है। प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाव बंध और प्रदेश बंध। वैसे बंध के दो भेद और हैं, द्रव्य बंध, भाव बंध। किन्तु जो जीव इस बंध से छूटना चाहता है उसे सर्वप्रथम, आते हुय कर्मों को रोक देना चाहिये जिसे संवर कहते हैं। ये संवर पांच समीति, पंचइन्द्रिय निरोध, षट आवश्यक, शेष सात विशेष गुण और तीन गुप्ति आदि का पालन करने से होता है। यह संवर १२ अनुप्रेक्ष बाइस परिषह जाय, पांच प्रकार का चारित्र, दस प्रकार के धर्म के माध्यम से होता है। ये संवर तत्व को प्राप्त करने वाला जीव तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा करता है, आत्मा में विद्यमान सभी कर्मों को वह जला देता है, नष्ट कर देता है तभी तो ये आत्मा मोक्ष तत्व को प्राप्त करती हैं।

इसे आप ऐसे समझ सकते हैं। जैसेः- कोई व्यक्ति नाव में बैठा हुआ है, और नाव नदी में चल रही है। वह नाव अजीव है, उसमें बैठा हुआ मनुष्य जीव है। उस नाव में छेद हो जाने से नदी में से पानी नाव में आ रहा है, उस पानी के नाव में आ जाने का नाम है माना कि आश्रव। जब नाव में पानी भर जाता है तो उसे कहते हैं बंध। और पुनः जब नाव भर जायेगी तो नदी में डूब जायेगी, इसलिये विवेकी व्यक्ति उस पानी को निकालने का प्रयास करता किन्तु जितना पानी निकालता जाता है उतना पानी और भर जाता है। इसलिये नाव पार नहीं हो पा रही है। जिसने सम्यक्त्व को प्राप्त किया, सम्यक ज्ञान को प्रापत किया है, ऐसा विवेकी व्यक्ति संयम को धारण कर उस नाव के छेदों को बंद कर देता है, इसे संवर कहते हैं। और जब नाव के छेद बंद हो गये, भरे हुये पानी को नाव से बाहर निकाल दिया जिसे माने निर्जरा तत्व। जब नाव से सारा पानी बाहर निकल गया, तो नाव को वह खेवटिया पतवार के द्वारा खेकर किनारे पर ले जाता है, जिसे कहते हैं मोक्ष तत्व।

महानुभाव!

ये जीव अपनी आत्मा को तप के द्वारा तपाकर के शुद्ध परमात्मा बना

सकता है, जैसे खदान से निकला हुआ सोना अशुद्ध होता है उसे तपा करके शुद्ध कर लिया जाता है।

महानुभाव!

धर्म आत्मा का स्वभाव है, उस धर्म को प्राप्त किये बिना, संसार में कोई भी प्राणी सुखी नहीं हो सकता। जब तक यह जीव पाप कर्मों से संलिप्त रहता है, तब तक निरन्तर कर्मों का बंध करता हुआ संसार में जन्म मरण के दुखों को प्रापत होता रहता है। इसलिये हे भव्य जीवो! जिनेन्द्र भगवान ने द्वादशांग रूपी जिनवाणी में यही कहा है कि अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हो, लौकिक और पारमार्थिक सुखों को प्राप्त करना चाहते हेा या अपनी आत्मा को परमात्मा बनाना चाहते हो तो समस्त पापों का त्याग करके धर्म मार्ग में लग जाना चाहिये। यह धर्म ही सम्पूर्ण प्रकार के सुखों को देने वाला है, ये धर्म ही जन्म मरण की परम्परा से मुक्त करने वाला है, ये धर्म ही कर्मों क क्षय करने वाला है, इसी धर्म साधना के माध्यम से प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकती है, प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है।

हे संसार के भव्य प्राणियो! आप भी अपनी आत्मा का कल्याण करो, जि वचनों को स्वीकार करो, अंगीकार करो और निग्रंथ अवस्था को स्वीकार करके समस्त कर्मों का क्षय करके अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने का उपक्रम करो। यही कल्याण का मार्ग है यही श्रेयोमार्ग है, यदि मुनि अवस्था को धारण करने की सार्मथ्य नहीं है तो, श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहिये। सर्वप्रथम सत्पव्यसन का त्याग करना चाहिये, अष्टमूलगुणों को स्वीकार करना चाहिये, पांचअणंव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत को स्वीकार करना चाहिये। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करना चाहिये। प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है कि वह छः आवश्यक कर्तव्यों का नित्य ही पालन करें, जिससे गृहस्थी संबंधी पापों से मुक्ति पा सके। हे संसार के भव्य प्राणियों! आज आपने पूर्व सातिशय पुण्य के उदय से मनुष्य पर्याय को प्राप्त किया है। मनुष्य अवस्था में यदि आत्मा का कल्याण नहीं किया तो संभवतः पुनः आत्मा कल्याण का पुनः मौका मिले ना मिले, इसलिये संसार के भव्य प्राणी सभी श्रेयोमार्ग में लगे, कल्याण के मार्ग में लगे, यही धर्म का सार है.....

यही धर्म का सार है.....यही धर्म का सार है.....